3 भारत में राजकोषीय-मौद्रिक समन्वयः एक निर्धारण

व्यवस्था परिवर्तन, प्रथम राजकोषीय घाटों के स्वतः मुद्रीकरण से सीमित मुद्रीकरण तक और उसके बाद राजकोषीय उत्तरदायित्व और बजट प्रबंध अधिनियम प्रेरित आगे और मुद्रीकरण-नियंत्रण से भारत में मौद्रिक नीति विन्यास (सेटिंग) के लिए स्वतंत्रता की मात्रा में काफी अधिक वृद्धि हुई है। किन्तु, नयी व्यवस्था के अंतर्गत राजकोषीय-मौद्रिक समेकन के लिए नयी चुनौतियां उभर कर सामने आयी हैं, जिनके लिए अग्रांकित पर ध्यान देने की आवश्यकता है (i) परंपरागत मुद्रीकरण के बिना भी भारी राजकोषीय घाटों की मुद्रास्फीतिकारक संभाव्यता, (ii) मौद्रिक नीति पर, राजकोषीय खर्च की प्रचक्रीयता के प्रयास में मांग प्रबंध संबंधी दबाव और (iii) कर्ज गति सिद्धांतों के कारण निजी निवेश का बहिर्गमन और मौद्रिक प्रबंध पर प्रभाव। इस पृष्ठभूमि के समक्ष नये राजकोषीय नियमों तथा मौद्रिक नीति पर राजकोषीय प्रभुत्व की कल्याण लागत के पुनर्निर्धारण की आवश्यकता।

1. प्रस्तावना

3.1 इस अध्याय में, भारत में राजकोषीय-मौद्रिक समन्वय का निर्धारण प्रस्तुत किया गया है, जिसमें संस्थागत विकास और अनुभवजन्य प्रवृत्तियों तथा विश्लेषण को शामिल किया गया है। इस अध्याय के प्रमाण इस बात की ओर संकेत करते हैं कि यद्यपि अनेक संस्थागत परिवर्तनों से उन्नत राजकोषीय-मौद्रिक समन्वय सम्पादित करने में सहायता मिली है तथा मौद्रिक नीति का राजकोषीय प्रभुत्व संतुलित हुआ है, नई चुनौतियां उपस्थित हो गई हैं जिन्होंने मौद्रिक नीति की प्रभावोत्पादकता का अधिक्रमण कर लिया है।

3.2 खंड ।। में इस बात पर चर्चा की गई है कि किस प्रकार बड़े राजकोषीय घाटे और परिणामी बड़े बाजार उधार नये रूपों में मुद्रीकरण के जोखिम प्रस्तुत करते हैं और राजकोषीय तथा मौद्रिक प्राधिकारियों के मध्य समायोजन के भार की सहभागिता के एक गेम-थियोरेटिक वातावरण की ओर ले जा सकते हैं। खंड ।।। में संस्थागत ढांचे के विभिन्न चरणों में राजकोषीय-मौद्रिक समन्वय के विकास को शामिल किया गया है। खंड IV में मुद्रास्फीति प्रबंध में राजकोषीय और मौद्रिक नीति समन्वय पर प्रकाश डाला गया है। खंड V के अंतर्गत सकल मांग प्रबंध के लिए सरकारी खर्च में चक्रीयता तथा उसके निहितार्थ का विश्लेषण किया गया है। खंड VI भारत में कर्ज-घाटा गति-सिद्धांत पर अनुभवजन्य विश्लेषण प्रस्तुत करता है। खंड VII में भारत में मौद्रिक नीति पर राजकोषीय प्रभुत्व को और घटाने के लिए कठोर किन्तु चक्रीय रूप से समायोजित राजकोषीय नियमों के लिए एक मामला बनाने हेतु, इस अध्याय में शुरू किये गये विश्लेषण के नीति निहितार्थों का सार-संक्षेप दिया गया है।

II. मौद्रिक नीति संबंधी राजकोषीय अनिवार्यताएं

मौद्रिक नीति पर राजकोषीय प्रभुत्व संतुलित होता है किन्तु कम नहीं हुआ है

3.3 पिछले दो दशकों में राजकोषीय और मौद्रिक नीति सुधारों की एक श्रृंखला के परिणामस्वरूप भारत में मौद्रिक नीति पर राजकोषीय प्रभुत्व संतुलित हुआ है। इनमें से सर्वाधिक उल्लेखनीय ये थेः (i) सरकारी कर्ज की नीलामी प्रारंभ करते हुए बाजार-निर्धारित ब्याज दर प्रणाली अपनाना, (ii) भारत सरकार और भारतीय रिज़र्व बैंक के बीच दो पूरक करारों के माध्यम से राजकोषीय घाटों के स्वतः मुद्रीकरण को समाप्त किया जाना (iii) राजवित्तीय उत्तरदायित्व और बजट प्रबंध (एफ आर बी एम) अधिनियम, 2003 का अधिनियमन करते हुए कर्ज के मुद्रीकरण पर प्रतिबंध लगाया जाना जिसके अंतर्गत 1 अप्रैल, 2006 से सरकारी प्रतिभूतियों के प्राथमिक निर्गमों में भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा अभिदान किये जाने पर रोक लग गई है। इन ऐतिहासिक कदमों से मौद्रिक नीति पर राजकोषीय प्रभुत्व में काफी अधिक कमी हुई है।

3.4 इसी अवधि के दौरान, रिज़र्व बैंक ने दूरगामी मौद्रिक सुधार प्रारंभ किये जिनके अंतर्गत बाजार आधारित सार्वजनिक कर्ज बाजारों का विकास करते हुए मौद्रिक नीति के प्रत्यक्ष उपकरणों के स्थान पर अप्रत्यक्ष उपकरणों को अपनाया गया है। इससे, मुद्रा और कर्ज बाजारों को कम्पायमान करने के लिए नियंत्रित ब्याज दरों पर आधारित वित्तीय दमन के शासन से अर्थव्यवस्था को क्रमशः बाहर निकालने में सहायता मिली है। अब ब्याज दरें अधिकांशतः बाजार द्वारा निर्धारित होती हैं। आगे-पीछे राजकोषीय और मौद्रिक

प्राधिकारियों द्वारा अनुसरण किये गये सुधारों के कारण समष्टि आर्थिक प्रबंध की प्रभावोत्पादकता को सुधारने में सहायता मिली है। किंतु, नई चुनौतियां उभर कर सामने आ गई हैं। राजकोषीय घाटे में योग के अतिरिक्त, विशेष रूप से ईंधन के लिए भारी सहायता राशियों ने मांग समायोजनों को सीमित कर दिया है और चालू खाते पर अपने प्रभाव को विस्तारित कर दिया है। भारी पूंजी आगमनों से चालू खाते के अंतराल का वित्तपोषण किया गया किन्तु पूंजी प्रवाह की अस्थिरता के कारण ब्याज दर और विनिमय दर दबावों में वृद्धि हो गई। उसी समय, खुला बाजार, परिचालन (ओ एम ओ) को, यद्यपि वे अनिवार्य रूप से एक मौद्रिक साधन है, समय-समय पर वित्तीय स्थितियों को व्यवस्थित रखने के लिए भारी बाजार उधार में फैक्टर होना पड़ा था। ऐसी अवधियों में, जब मुद्रास्फीति उच्च थी, इसने क्रमशः मौद्रिक प्रबंध पर दबाव बढ़ाये। इनके लिए, संस्थागत और कानूनी व्यवस्थाओं के अतिरिक्त उपकरणों और प्रथाओं द्वारा उपलब्ध कराये गये व्यापक ढांचे में आगे और परिवर्तन करने का पता लगाने की दृष्टि से राजकोषीय-मौद्रिक समन्वय से संबंधित मुद्दों का पुनरीक्षण करने की आवश्यकता है। इन परिवर्तनों से स्वतंत्रता, जवाबदेही और बृहत समन्वय के साथ मौद्रिक और राजकोषीय नीतियों की प्रभावोत्पादकता में सुधार होना चाहिए।

3.5 एक ओर जहाँ वित्तीय दमन के दिनों से एक व्यवस्था परिवर्तन हुआ है। कर्ज की स्वतः मुद्रीकरण व्यवस्था समाप्त हो गयी है। दूसरी ओर, उच्च राजकोषीय घाटों और नियंत्रित कीमत तंत्रों अथवा उपयागिताओं के कीमतीकरण में कीमत अपरिवर्तनीयता के माध्यम से मौद्रिक नीति पर राजकोषीय प्रभुत्व कायम है, जबकि इस प्रभुत्व को कम करने के लिए बड़े कदम उठाये गये थे। कर्ज के मुद्रीकरण में योगदान देने वाले तत्वों के संबंध में वैचारिक वाद-विवाद पर बॉक्स III.1 में चर्चा की गई है।

बॉक्स III.1
कर्ज का मुद्रीकरण: वैचारिक बहस

कर्ज के मुद्रीकरण को समझना एक कठिन विचार है क्योंकि उसे स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं किया गया है। इसे अनेक प्रथाओं के माध्यम से समझा जा सकता है जो पारदर्शी, पारभासी, अपारदर्शी अथवा प्रच्छन्न हो सकती हैं। दीर्घ काल तक कर्ज के मुद्रीकरण को ''सरकारी कर्ज को मुद्रा में परिवर्तित करने'' अथवा ''जब सरकारी बांड जारी किये जाते हैं तो केंद्रीय बैंक द्वारा उनकी खरीद'' के रूप में समझा जाता था।

दोनो परिभाषाओं के साथ अपनी-अपनी समस्याएं हैं। विशेष रूप से, सरकार नोट छाप कर अथवा कर्ज जारी कर अपने धाटों का वित्तपोषण कर सकती है। पूर्व कथित क्रिया प्रत्यक्ष रूप से मौद्रिक नियंत्रण को क्षीण करती है। आधुनिक विश्व में, जब कि सकल मुद्रा आपूर्ति को नियंत्रित करने का प्रभार केंद्रीय बैंक के पास है, सरकारें विशेष रूप से उनके घाटों का, सरकारी बांड जारी करके वित्तपोषण करती हैं। वे जनता द्वारा, मुद्रा की वर्तमान आपूर्ति से खरीदे जा सकते हैं अथवा मौद्रिक आधार में वृद्धि करके और यहाँ से मुद्रा आपूर्ति करते हुए केंद्रीय बैंक द्वारा खरीदे जा सकते हैं। मुख्य प्रश्न यह है कि क्या केंद्रीय बैंक द्वारा खरीदी गई कोई सरकारी प्रतिभूतियां कर्ज के मुद्रीकरण के बराबर होंगी।

केंद्रीय बैंक चलनिधि प्रदान करने (अथवा अवशोषित करने) के लिए प्रतिभूतियों की खरीद (अथवा बिक्री), खुला बाजार परिचालनों के माध्यम से मौद्रिक नीति का संचालन कर रहे हैं। ऐसा वे इसलिए करते हैं कि मौद्रिक आधार और/अथवा ब्याज दरों को उनके लक्ष्यों के अनुरूप समायोजित किया जा सके। ये परिचालन प्रायः दैनिक आधार पर संचालित किये जाते हैं, कभी-कभी दिन में एक बार से अधिक बार किये जाते हैं। इसलिए केंद्रीय बैंक द्वारा सरकारी प्रतिभूतियों की खरीद मात्र को ही यदि मुद्रीकरण के रूप में देखा जाता है तो लगभग सभी केंद्रीय बैंक सभी समय में अधिकांशतः ऐसा करते हैं। इसलिए क्या मुद्रीकरण सरकारी प्रतिभूतियों की केंद्रीय बैंक द्वारा खरीद को प्राथमिक बाजारों में ही प्रतिबिंबित करता है और द्वितीयक बाजारों में प्रतिबिंबित नहीं करता है ? यह विभेदीकरण तब तक ही कार्य करेगा जब तक केंद्रीय बैंक सरकारी कर्ज वित्तपोषण को समर्थन देने के लिए खुला बाजार खरीद में संलग्न नहीं होते हैं। यदि केंद्रीय बैंक सरकारी बांडों के प्राथमिक निर्गमों को अभिदान न देते हुए भी बैंकिंग क्षेत्र द्वारा उनकी खरीद को समर्थन देने के लिए चलनिधि प्रदान करना जारी रखते हैं तो निवल परिणाम कर्ज का मुद्रीकरण होगा। केंद्रीय बैंक द्वारा सरकारी प्रतिभूतियों की खरीद से मौद्रिक आधार का विस्तार होता है, किन्तु मुद्रीकरण के लिए सूक्ष्म विभेद है कि क्या इस प्रकार की खरीद सरकारी कर्ज परिचालनों के समर्थन में हैं। व्यवहार में, इनके बीच लिखित में भेद करना अब भी कठिन है कि केंद्रीय बैंक द्वारा खरीदी गई सरकारी प्रतिभूतियों का कौन सा भाग मौद्रिक नीति के संचालन के प्रयोजन से है और सरकारी उधारों के समर्थन में वे किस अनुपात में हैं। इस निर्णय की कुंजी सरकारी बांडों में केंद्रीय बैंक की खरीद आधार मुद्रा और मुद्रा आपूर्ति विस्तार के उसके लक्ष्य के अनुरूप किये जाने में है। ये लक्ष्य कर्ज प्रबंध विचार से स्वतंत्र रूप से निर्धारित किये जाने चाहिए। व्यवहार में, आज अनेक केंद्रीय बैंक कुल मौद्रिक राशियों का लक्ष्य निर्धारित नहीं करते हैं। इसके बजाय वे ब्याज दर लक्ष्य निर्धारण पर विश्वास करते हैं और अल्पावधि नीति दरों पर परिचालन करते हैं - विशेष रूप से,एक दिवसीय दर अथवा 14 दिवसीय रेपो दर। वे परिपक्वता के दीर्घावधि अंत में रेपो परिचालनों और एक मुश्त बिक्री/खरीद के माध्यम से संचालित होने वाले खुला बाजार परिचालनों के माध्यम से बैंक की आरक्षित निधियों और ब्याज दरों पर नियंत्रण रखते हैं। मात्रात्मक सुलभता के मामले में विशेष रूप से यह सत्य है। परिणामस्वरूप, प्रतिफल वक्र को प्रभावित करने के द्वारा किसी रूप में मुद्रीकरण पाया जा सकता है।

संदर्भ

थॉम्टन, डैनियल एस. (2010), ''मोनेटाइज़िंग दि डेब्ट,'' इक्नॉमिक सिनोप्सेस नं. 14, फेडरल रिज़र्व बैंक ऑफ सेंट लुइस।

3.6 यद्यपि एफ आर बी एम एक्ट, 2003 के अधिनियमन ने रिज़र्व बैंक को सरकारी प्रतिभूतियों के प्राथमिक निर्गमों में भाग लेने से वर्जित कर दिया है, यह सुस्पष्ट है कि भारी राजकोषीय घाटे संभाव्य रूप से किसी न किसी रूप में कर्ज के मुद्रीकरण की ओर ले जाते हैं। यह उस स्थिति में अधिक महत्वपूर्ण है जब भारी उधारों से निजी ऋण का बहिर्गमन हो जाता है तथा मौद्रिक प्राधिकारी इस बात के लिए बाध्य हो जाते हैं कि वे सरकारी बांडों की खुला बाजार खरीद के माध्यम से काफी अधिक चलनिधि उपलब्ध कराएं। इससे मौद्रिक नीति की प्रभावोत्पादकता क्षीण होती है (चार्ट III.1) ।

3.7 भारत ने कर्ज के मुद्रीकरण को हटाने की ओर तीव्र गति से प्रगति की है। दीर्घ काल तक सरकार के घाटों का तदर्थ खजाना बिलों के जारीकरण के माध्यम से स्वतः मुद्रीकरण हो जाता था। 91 दिवसीय परिपक्वता वाले ये बिल गैर -विपणन योग्य लिखत थे जो स्वतः रिज़र्व बैंक को जारी हो जाते थे ताकि वह सरकारी धाटे को पूरा करने के लिए उसके पास रखी हुई केंद्र सरकार की नकद शेष राशियों से पुनः पूर्ति कर सके। स्वतः मुद्रीकरण की यह समस्या 91 दिवसीय खजाना बिल ''सदासुलभ'' (4.6 प्रतिशत वार्षिक के नियत बट्टे पर) के निर्गम द्वारा उत्पन्न वित्तीय निरोध (रीप्रेशन) के अतिरिक्त थी जो बैंकों द्वारा अल्पावधि निवेश के लिए अथवा सांविधिक चलनिधि अनुपात (एस एल आर) के निर्वाह हेतु अपेक्षाओं का पालन करने के लिए मुख्य रूप से अपनाये गये थे। रिज़र्व बैंक को तदर्थ खजाना बिल जारी करने के द्वारा सरकारी खर्च के वित्तपोषण के कारण आरक्षित मुद्रा में वृद्धि हुई। इसके अतिरिक्त, बैंकों द्वारा अभिदत्त सतत् उपलब्ध खजाना बिलों की भी रिज़र्व बैंक ने पुनर्भुनाई की, जिससे मुद्रीकरण में वृद्धि हुई । भारत में कर्ज के मुद्रीकरण को घटाने के लिए हाल के उपायों के संबंध में बॉक्स III.2 में चर्चा की गई है।

चार्ट III.1: उच्च मुद्रास्फीति के बीच उच्च राजकोषीय घाटों तथा बृहत् खुला बाजार खरीद से कभी-कभी मौद्रिक दबाव बढ़ता है

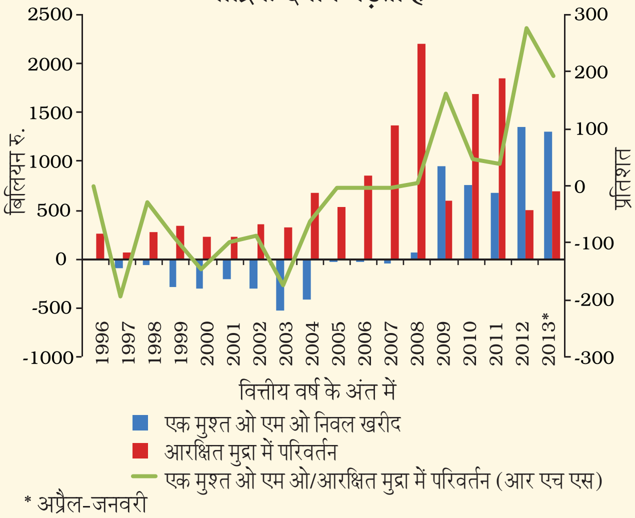

* अप्रैल-जनवरी

3.8 मौद्रिक नीति पर राजकोषीय प्रभुत्व का मुद्दा मुद्रीकरण मुद्दे के परे जाता है। यह अनेक रूपों में पाया जाता है। केंद्रीय बैंक द्वारा वित्तपोषित न किये जाने के बावजूद भारी राजकोषीय घाटों के मुद्रास्फीतिकारक परिणाम होते हैं। उदाहरण के लिए, सरकार द्वारा ऊर्जा क्षेत्र में नियंत्रित कीमतों को अविनियमित करने हेतु कुछ कदम उठाये जाने के बावजूद दमित मुद्रास्फीति, मुद्रास्फीति प्रबंधन पर देर तक जारी रहती है। प्रथम चरण पर, दमित मुद्रास्फीति, मुद्रास्फीति को पुष्ट करती है क्योंकि कीमत अनम्यता के कारण आवश्यक हो गई सहायता राशियों (सब्सिडीज) से राजकोषीय घाटे का विस्तार हो जाता है। द्वितीय चरण पर, चूंकि सब्सिडियां अधारणीय हो जाती हैं तो वे कभी न कभी बृहत पैमाने पर असतत कीमत समायोजन को आवश्यक बना देती हैं जिससे मुद्रास्फीति प्रत्याशाओं को बल

बॉक्स III.2
भारत में कर्ज का मुद्रीकरण

1980 के वर्षों में बाद वाले समय से मौद्रिक नीति पर राजकोषीय प्रभुत्व को घटाने के लिए अनेक कदम उठाये गये थे। प्रथम, रिज़र्व बैंक और सरकार ने बाजार आधारित सार्वजनिक कर्ज बाजार की स्थापना करने की ओर कदम बढ़ाया। नवंबर 1986 से 182 दिवसीय खजाना बिलों, अप्रैल 1992 से 364 दिवसीय खजाना बिलों और जनवरी 1993 से 91 दिवसीय खजाना बिलों की नीलामी प्रारंभ की गई थी। चूंकि नीलामी आधारित आय उच्चतर थी, सरकारी उधारों का एक वर्धमान भाग बाजार स्रोतों के माध्यम से वित्तपोषित किया जाना था, ताकि रिज़र्व बैंक द्वारा आरक्षित मुद्रा का बेहतर आरक्षण किया जा सके।

द्वितीय, रिज़र्व बैंक और भारत सरकार के बीच दो पूरक करारों (एग्रीमेंट) पर हस्ताक्षर किये गये थे। प्रथम करार पर 9 सितंबर 1994 को हस्ताक्षर किये गये थे जिसके अंतर्गत 1996-97 के साथ समाप्त होने वाली तीन वर्षों की अवधि के दौरान तदर्थ खजाना बिलों के निर्माण को सीमित करना था। तदर्थ खजाना बिलों के निवल निर्गम की एक समापन-वर्ष आधार पर उच्चतम सीमा (कैप) निर्धारित की गई थी। इसके अलावा, इस बात पर सहमति व्यक्त की गई थी कि यदि एक वर्ष के दौरान वह 10 लगातार कार्य दिवसों की निर्धारित सीमा से अधिक हो जाती है तो रिज़र्व बैंक स्वतः ही

(जारी...)

(...समाप्त)

खजाना बिलों अथवा दिनांकित प्रतिभूतियों को नीलाम करके अतिरिक्त सीमा को घटा देगा। तदर्थ खजाना बिलों के माध्यम से निधीयन को पूर्ण रूप से हटाये जाने से संबंधित द्वितीय पूरक करार पर 6 मार्च 1997 को हस्ताक्षर किये गये और मार्च अन्त 1997 की स्थिति के अनुसार खजाना बिलों की बकाया राशि को 4.6 प्रतिशत के प्रतिफल पर विशेष अद्यतन की गई प्रतिभूतियों में परिवर्तित कर दिया गया था।

अर्थोपाय अग्रिमों की एक प्रणाली (डब्ल्यू एम ए) 1 अप्रैल 1997 से लागू की गई थी। डब्ल्यू एम ए प्रणाली के अंतर्गत रिज़र्व बैंक पूर्व-घोषित छः माही सीमाओं तक अल्पावधि अग्रिम प्रदान कर रहा है, जो तीन महीने के भीतर पूर्ण रूप से अदा करने योग्य होंगे। भारत सरकार को ओव्हरड्राफ्ट उठाने की भी अनुमति दी गई है किन्तु उक्त ओवरड्राफ्ट पर ब्याज दर डब्ल्यू एम ए की ब्याज दर से अधिक होगी। 1 अप्रैल 1999 से प्रभावी, ओवरड्राफ्ट 10 कार्य - दिवसों की अधिकतम अवधि तक के लिए सीमित कर दिये गये हैं। इसके अलावा, इस बात पर सहमति हुई थी कि जब भी कभी डब्ल्यू एम ए सीमा के 75 प्रतिशत की स्थिति हो जाएगी, रिज़र्व बैंक सरकारी प्रतिभूतियों के नये निर्गम जारी करने के लिए प्रवृत्त होगा। इस बात पर भी सहमति हुई थी कि रिज़र्व बैंक के पास रखी हुई सरकार की अधिशेष नकदी राशियां एक सहमत स्तर से अधिक हो जाने पर अतिरिक्त राशि का सरकार की स्वयं की प्रतिभूतियों में निवेश किया जायगा।

तदर्थ खजाना बिलों की समाप्ति के माध्यम से कर्ज के स्वतः मुद्रीकरण के ठहराव के बावजूद, अन्य रूप में मुद्रीकरण जारी रहा। रिज़र्व बैंक ने सार्वजनिक कर्ज के प्राथमिक निर्गमों को रिज़र्व बैंक पर नीलामी के विकास के परिणामस्वरूप अभिदान जारी रखा क्योंकि प्राथमिक व्यापारियों की हामीदारी क्षमता सीमित थी। उसी रूप में, कर्ज के मुद्रीकरण को हटाने की ओर तृतीय प्रमुख कदम एफ आर बी एम अधिनियम, 2003 के अधिनियम के साथ लिया गया था जिसमें 1 अप्रैल 2006 से सरकार के प्राथमिक निर्गमों में रिज़र्व बैंक द्वारा अभिदान पर रोक लगा दी गई थी।

क्या अब भारत में मुद्रीकरण को पूरी तरह से हटा दिया गया है कि रिज़र्व बैंक अब और सरकारी नीलामियों में प्राथमिक निर्गमों को अभिदान नहीं करता है ? वास्तविकता में मुद्रीकरण काफी हद तक हटा दिया गया है किन्तु पूरी तरह से नहीं हटाया जा सका है। जब तक राजकोषीय घाटे बहुत अधिक रहते हैं, बाजार उधारों का आकार भी बड़ा रहेगा और वह मौद्रिक नीति के संचालन पर अतिक्रमण करता रहेगा, इस बात की परवाह किये बिना कि कर्ज प्रबंध का संचालन किस प्रकार किया जाता है। सरकार के निवल बाजार उधार कार्यक्रम का आकार (दिनांकित प्रतिभूतियां) आठ वर्ष में लगभग 9.7 गुणा बढ़कर 2012-13 में 4.9 ट्रिलियन रूपये हो गया था। इसके अलावा, सरकार ने 364 दिवसीय खजाना बिलों के माध्यम से 1.16 ट्रिलियन रूपये के अतिरिक्त निधीयन का सहारा लिया था। इस अवधि के दौरान रिज़र्व बैंक ने भारी मात्रा में निवल खुला बाजार खरीद का संचालन किया था जिसमें 2008-09 में 945 बिलियन रूपये, 2009-10 में 755 बिलियन रूपये, 2010-11 में 672 बिलियन रूपये और 2011-12 तथा 2012-13 में जनवरी तक प्रत्येक में 1.3 ट्रिलियन रूपये शामिल थे। यद्यपि, सिद्धांत रूप में रिज़र्व बैंक चलनिधि और मौद्रिक स्थितियों को प्राभावित करने के लिए खुला बाजार परिचालनों का इस्तेमाल करता है किन्तु व्यवहार में यह अंतर करना कठिन है कि खुला बाजार परिचालनों का कौन सा भाग शुद्ध रूप से इन्हीं प्रतिफलों के लिए काम में लिया गया था और कौन सा भाग उस प्रतिफल से प्रभावित हो सका है कि भारी सरकारी उधार बाजार के लिए विघटनकारी नहीं हो सकते हैं। 2008-09 में ओ एम ओ, वैश्विक वित्तीय संकट की पृष्ठभूमि में, उसी वर्ष में शुरू की गई मौद्रिक नीति सुलभता के सहक्रम में थे। किन्तु, मार्च 2010 और अक्तूबर 2011 के बीच मौद्रिक नीति स्पष्ट रूप से कठोर विधि में थी। क्या उस अवधि में ओ एम ओ खरीद से मौद्रिक नीति की प्रभावोत्पादकता क्षीण हुई थी, यह वाद-विवाद और अनुसंधान का एक विषय हो सकता है। सभी पहलुओं पर विचार करने के बाद, 2009-10 से की गई ओ एम ओ खरीद के कारण, मौद्रिक नीति के अंतर्गत की गई परिकल्पना से परे मौद्रिक विस्तार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा था। इस अवधि के दौरान की गई ओ एम ओ खरीद से, कुल मिलाकर मौद्रिक नीति और कर्ज प्रबंध, दोनों ही उद्देश्यों की पूर्ति हो गई। उदाहरण के लिए, 2011-12 के दौरान सरकार ने बजट-प्रावधान राशि के अतिरिक्त लगभग 2 ट्रिलियन रूपये (खजाना बिलों सहित) की राशि बाजार से उधार ली थी, जबकि केंद्रीय बैंक को कठोर चलनिधि स्थिति को नरम करने के लिए आरक्षित मुद्रा भंडार का निर्माण करने की आवश्यकता थी। ओ एम ओ ने भी, रिज़र्व बैंक द्वारा किये गये विदेशी मुद्रा बाजार हस्तक्षेप से उत्पन्न चलनिधि कठोरता को कम करने में सहायता की थी। हालांकि 2012-13 के दौरान, ब्याज दर चक्र उलटाव के साथ, उच्च सरकारी उधारों ने प्रतिफल पर अपने प्रभाव के माध्यम से वित्तीय बाजारों के अन्य खण्डों को न्यूनतर नीति दरों के अंतरण को कमज़ोर कर दिया हो। इसलिए उधारों की पूर्ण राशि का दबाव अब भी मौद्रिक नीति पर पड़ सकता है।

इसके अलावा, 2008-09 के दौरान जब वैश्विक वित्तीय संकट द्वारा प्रस्तुत असाधारण चुनौतियों का सामना करने के लिए मौद्रिक और राजकोषीय नीतियों ने आगे-पीछे के क्रम में कार्य किया तब रिज़र्व बैंक द्वारा संचालित विशेष बाजार परिचालनों (एस एम ओ) के माध्यम से कर्ज का मुद्रीकरण भी किया गया था। 2008 में प्रारंभ किये गये एस एम ओ से, विदेशी मुद्रा जुटाने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र की तेल विपणन कंपनियां रिज़र्व बैंक को तेल बांड बेचने में सक्षम हो सकी। इन एस एम ओ से वास्तव में एफ आर बी एम अधिनियम व्यवस्था कमज़ोर हुई, क्योंकि इसने अप्रत्यक्ष रूप से सरकार के घाटों का दो कदमों में मुद्रीकरण कर दिया था। प्रथम, तेल बांड जारी करते हुए सरकार ने वास्तविक राजकोषीय घाटे को कम करके दिखाया। द्वितीय, यदि सरकार उसे अपनी दिनांकित प्रतिभूतियों के माध्यम से धन प्रदान करती तो रिज़र्व बैंक उसे प्राथमिक निर्गमों में अभिदान नहीं कर सका होता। तथापि, क्योंकि तेल बांडों में चलनिधि का अभाव था, रिज़र्व बैंक ने चलनिधि प्रदान करने के लिए प्रवेश किया तथा उसके साथ ही तेल कंपनियों की डॉलर निधीयन आवश्यकताओं को भी पूरा किया। इस नवोन्मेषी उपकरण ने ब्याज दरों के अतिरिक्त विनिमय दरों पर दबाव को कम करने में सहायता प्रदान की। जब एस एम ओ आकार में छोटे थे, उन्होंने संकट प्रबंध उद्देश्यों की पूर्ति की। हालांकि, भारी सरकारी खरीद और भारी खुला बाजार खरीद कभी-कभी इस सीमा तक समष्टि आर्थिक चुनौतियां उपस्थित करते हैं कि उनसे कर्ज के मुद्रीकरण की स्थिति पैदा हो सकती है।

संदर्भ

रंगराजन, सी. (2007), ''इंडियन बैंकिंग सिस्टम चेलेंजेज अहेड,'' प्रथम आर.के. तलवार स्मृति व्याख्यान, भारतीय बैंकिंग और वित्त संस्थान, 31 जुलाई 2007

मिलता है। वर्तमान परिस्थिति में, यदि तेल विपणन कंपनियों की कुल कम वसूली को हटाने के लिए एक ही बार में कीमतें समायोजित की जाती हैं और कोयला तथा बिजली की कीमतें 10-10 प्रतिशत के संतुलन द्वारा बढ़ा कर समायोजित की जाती हैं तो उसके प्रत्यक्ष प्रभाव से थोक मूल्य सूचकांक (डब्ल्यू पी आइ) में 4 प्रतिशत तक वृद्धि हो जाएगी। इससे मौद्रिक नीति पर राजकोषीय प्रभुत्व के चिरस्थायी रहने का संकेत मिलता है। कीमत स्तर के राजकोषीय सिद्धांत (एफ टी पी एल) के अनुसार राजकोषीय प्रभुत्व एक कमज़ोर अथवा मजबूत रूप में पाया जाता है। कमज़ोर रूप में, राजकोषीय प्रभुत्व तब पाया जाता है जब राजकोषीय घाटे का समंजन करने के लिए मुद्रा संवृद्धि बढ़ती है और इसलिए मुद्रास्फीति पर ऊर्ध्वमुखी दबाव डालती है। मज़बूत रूप में, यद्यपि राजकोषीय अंतराल की अनुक्रिया में मुद्रा आपूर्ति के स्तर में कोई परिवर्तन नहीं होता है, राजकोषीय अंतराल सकल मांग के माध्यम से अपने प्रभाव के कारण स्वतंत्र रूप से मुद्रास्फीति का स्तर बढ़ा देता है। कमज़ोर रूप से यह संकेत मिलता है कि केंद्रीय बैंक मुद्रास्फीति को लक्ष्य नहीं कर सकता है क्योंकि वह राजकोषीय प्रभुत्व के अंतर्गत मुद्रा आपूर्ति को नियंत्रित नहीं कर सकता है। मज़बूत रूप का निहितार्थ है कि मुद्रास्फीति का एक मौद्रिक घटना होना आवश्यक नहीं है और उसके बजाय राजकोषीय नीति मुद्रास्फीति बढ़ाती है।

III. विभिन्न प्रणालियों के अंतर्गत राजकोषीय और मौद्रिक नीति के बीच पारस्परिक क्रिया

3.9 पिछले तीन दशकों में राजकोषीय और मौद्रिक नीतियों के लिए अपनाये गये ढांचों के अनुसार राजकोषीय और मौद्रिक नीति पारस्परिक क्रियाएं विकसित हुई हैं। इन ढांचों के आधार पर निम्नलिखित व्यापक चरण अभिनिर्धारित किये जा सकते हैं।

चरण I: 1980-81 से 1990-91 तक उच्च राजकोषीय प्रभुत्व

3.10 1980 के दशक में अत्यधिक घाटे देखे गये। केंद्र का सकल राजकोषीय घाटा (जी एफ डी)/जी डी पी अनुपात का औसत 6.7 प्रतिशत था, जो सांकेतिक रूप से 1970 के वर्षों के लिए 3.8 प्रतिशत के औसत की तुलना में उच्चतर था। उसी अवधि के दौरान उनके औसत जी एफ डी/जी डी पी अनुपात विस्तारित होकर 2.0 प्रतिशत से 2.8 प्रतिशत हो गया, जिससे राज्यों की राजकोषीय स्थिति भी बिगड़ गई थी। अन्य घाटा संकेतक भी वैसे ही खराब हो गये थे। उक्त राजकोषीय गिरावट केन्द्र की ओर से अधिक थी और मुख्य रूप से उसके राजस्व व्यय की ओर से उत्पन्न थी। कर और गैर-कर राजस्व के अतिरिक्त पूंजी प्राप्तियों में कुछ सुधार दिखाई दिया किन्तु पूंजी व्यय सीमित रहा। राजकोषीय गिरावट ने, मौद्रिक नीति उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए केंद्रीय बैंक की स्वायत्तता को सीमित करते हुए राजकोषीय घाटों के स्वतः मुद्रीकरण के लिए एक मार्ग के रूप में परिवर्तित होकर तदर्थ खजाना बिलों के साथ मौद्रिक नीति पर बहुत बड़ा भार डाल दिया।

3.11 1980 के वर्षों में सरकार को दिये गये रिज़र्व बैंक के निवल ऋण में तीव्र गति से विस्तार हुआ। 1980 के वर्षों में उच्च राजकोषीय घाटों के मौद्रिक निभाव का यह एक प्रत्यक्ष परिणाम था। रिज़र्व बैंक ने तदर्थ खजाना बिलों के माध्यम से घाटों का मुद्रीकरण किया। इसके परिणामस्वरूप निवल देशी आस्तियों (एन डी ए) में तीव्र वृद्धि हुई। उसके परिणाम के रूप में मौद्रिक दबाव महसूस किये गये जब कि निवल विदेशी मुद्रा आस्तियों (एन एफ ए) में एक तीव्र अवमंदन देखा गया। जनता के पास मुद्रा में एक चिरंतन गिरावट जारी रही किन्तु एन डी ए में विस्तार वर्धमान रूप से सरकार को निवल रिजर्व बैंक ऋण के बाहर आ गया। तेल कीमतों के दो आघातों के बाद, 1985-86 तक मुद्रास्फीति की स्थिति सामान्य रही किन्तु बाद में भारी राजकोषीय विस्तार के समर्थन से वापस आ गई जो मौद्रिक संकुचन द्वारा नियंत्रित नहीं की जा सकी।

3.12 उक्त अवधि के दौरान, ऋण बजट निर्माण से मौद्रिक लक्ष्य निर्धारण की ओर बढ़ने के निर्णय के साथ मौद्रिक नीति में एक प्रणाली अंतरण हुआ। मौद्रिक प्रणाली की कार्य-पद्धति की समीक्षा हेतु समिति (अध्यक्षः प्रो. सुखमय चक्रवर्ती, 1985) की रिपोर्ट के अनुसरण में रिज़र्व बैंक ने 1980 के वर्षों के मध्य में मौद्रिक लक्ष्य निर्धारण प्रारंभ किया। किन्तु, ऋण के सीधे आवंटन का ऋण बजट निर्माण ढांचा अधिकांश अवधि तक प्रचलित रहा। इस अवधि के दौरान, वाणिज्य बैंकों के साथ आवधिक ऋण बजट बैठकों के बाद रिज़र्व बैंक ने एक राजकोषीय वर्ष के दौरान दो बार अपनी ऋण नीति घोषित की। रिज़र्व बैंक ने जमा और ऋण संवृद्धि के लिए व्यापक दिशा निर्देश प्रस्तुत किये और साथ ही, समष्टि आर्थिक कुल राशियों, जैसे संवृद्धि और मुद्रास्फीति का निर्धारण करने के बाद प्रमुख अनुसूचित वाणिज्य बैंकों (एस सी बी) को ऋण के आवंटन संबंधी दिशा निर्देश भी सूचित किये।

3.13 इस अवधि के दौरान मौद्रिक नीति का राजकोषीय प्रभुत्व मौद्रिक नीति के लिए एक बाध्यकर दबाव बन गया था। सरकार के स्रोतों और निधियों के इस्तेमाल के बीच अस्थायी बेमेल स्थितियों में

सुधार लाने के लिए रिज़र्व बैंक ने चलनिधि प्रदान की तथा राजकोषीय घाटे तथा अत्यधिक चलनिधि निर्माण के बीच सहबद्धता के बारे में बारंबार चिंता व्यक्त की। चक्रवर्ती रिपोर्ट में भी इसी प्रकार की चिंता व्यक्त की गई, जिसमें बजट घाटे के मुद्रीकरण को बेहतर प्रतिबिंबित करने के लिए ''बजट घाटे'' की परिभाषा को व्यापक बनाने के लिए सरकार को सचेत किया गया था। बजट घाटे की व्यापक संकल्पना को स्वीकार करना राजकोषीय और मौद्रिक नीतियों के बीच बृहत समन्वय की ओर उठाया गया एक प्रमुख कदम था। समिति ने मौद्रिक लक्ष्य निर्धारण अपनाने की सिफारिश करते समय इस बात को नोट किया कि उत्पादन, मुद्रा और कीमतों के मध्य अंतर-संबंध जटिल बाधा है और यह कि इन बाधाओं के सटीक परिचालन निर्धारित करना कठिन है। उसी रूप में, एक वर्ष के लिए निर्धारित संकीर्ण समय-सीमा के भीतर मुद्रा, उत्पादन और कीमतों के बीच सहबद्धता को अलग से नहीं देखा जा सकता है।

3.14 मौद्रिक लक्ष्य निर्धारण में अंतरण को केवल 1990 के वर्षों के दौरान ही चरणबद्ध किया गया था। 1985-90 के दौरान कोई मौद्रिक लक्ष्य निर्धारित नहीं किये गये थे, सिवाय इसके कि पिछले वर्ष (वर्षों) में औसत एम3 संवृद्धि के साथ संबद्ध ऋण की उच्चतम सीमा को निर्धारित करने के लिए लक्ष्य निश्चित किया गया था। उसी रूप में, मौद्रिक संवृद्धि को सामान्य बनाने के लिए ऋण बजट व्यवस्था का व्यापक ढांचे के रूप में बना रहना जारी रहा किन्तु लक्ष्य सामान्यतया अतिलंघित होते थे, क्योंकि घरेलू बचतों पर सरकार के विशाल प्रारूप के सामने निजी क्षेत्र को ऋण समर्थन की आवश्यकता थी। इस अवधि के दौरान ऋण नीतियां, अधिकांशतः संकुचनकारी थीं, परन्तु कर्ज बाजार में व्यवस्थित स्थितियां बनाये रखने की आवश्यकता द्वारा उनकी प्रभावोत्पादकता में कमी हो गई थी।

3.15 रिज़र्व बैंक, मौद्रिक नियंत्रणअतिरिक्त के विरोधाभासी हितों तथा भारी मात्रा में ऋण आवश्यककताओं को पूरा करने के लिए आरक्षित नकदी निधि अनुपात (सी आर आर) के अतिरिक्त सांविधिक चलनिधि अनुपात (एस एल आर) तथा चयनात्मक ऋण नियंत्रण के साथ बाजीगरी करता रहा । 1989 में सी आर आर 15 प्रतिशत की अपनी सांविधिक उच्चतम सीमा पर पहुँच गई। रिज़र्व बैंक ने 1992 तक विभिन्न अवसरों पर वृद्धिशील निवल मांग और मीयादी देयताओं (एन डी टी एल) पर अतिरिक्त सी आर आर का सहारा लिया। रिज़र्व बैंक ने मौद्रिक और ऋण नीति के संचालन के लिए नियंत्रित ब्याज दरों - जमा और उधार दरों का भी इस्तेमाल किया।

3.16 एक सुस्पष्ट मौद्रिक लक्ष्य निर्धारण प्रणाली पर आधारित मौद्रिक नीति ढांचा केवल 1991-92 में अपनाया गया था, जब एक वास्तविक जी डी पी संवृद्धि 3 से 3.5 प्रतिशत थी, मुद्रास्फीति दर 9 प्रतिशत से अधिक नहीं थी, और एम3 विस्तार में लगभग 13 प्रतिशत की महत्वपूर्ण गिरावट की परिकल्पना की गई थी। एम3 संवृद्धि के 19.3 प्रतिशत हो जाने के साथ, एक व्यापक मार्जिन द्वारा, इस प्रकार से निर्धारित मौद्रिक लक्ष्य अतिलंघित हो गये थे। 1992-93 के लिए मौद्रिक लक्ष्य निर्धारण मुद्रीकृत घाटे में कमी की अंतर्निहित धारणा पर आधारित थे (केंद्र सरकार को दिये गये निवल रिज़र्व बैंक ऋण) ''जो 1991-92 में जी डी पी के 6.5 प्रतिशत के सकल राजकोषीय घाटे को घटा कर 1992-93 में 5.0 प्रतिशत किये जाने के सरकार के घोषित उद्देश्य के अनुरूप थे।''

3.17 भारी राजकोषीय प्रभुत्व के सामने भारत में ऋण बजट निर्धारण को बहुत अधिक सफलता नहीं मिली थी। उसने वित्तीय निग्रह के उत्पादन को समाप्त किया जिसने वास्तविक ब्याज दरों को न्यूनतर रखा और बचत और निवेश, दोनों को ही निरूत्साहित किया। उसके परिणामस्वरूप, अर्थव्यवस्था में निम्नतर वृद्धि हुई और मुद्रास्फीति बढ़ गई।

चरण II: 1991-92 से 2002-03 तक वित्तीय निग्रह से निकासी

3.18 द्वितीय चरण में वित्तीय क्षेत्र सुधार दिखाई दिये। सरकारी कर्ज के वित्तपोषण के लिए बाजार आधारित उपकरणों के क्रमशः विकास द्वारा यह स्पष्ट हुआ । इन सुधारों की रूपरेखा मुद्रा बाजार संबंधी कार्य दल की रिपोर्ट (अध्यक्षः एन. वाघुल) द्वारा 1987 में तथा नरसिंहम समिति की रिपोर्ट ।, 1991 द्वारा तैयार कर ली गई थी। एक समयावधि के दौरान अनेक कदम उठाये गये थे। इनमें मुद्रा बाजार उपकरणों का विकास, भारत सरकार (जी ओ आई) के खजाना बिलों की नीलामी का प्रारंभ, सी आर आर और एस एल आर के माध्यम से सांविधिक अग्रक्रयाधिकारों में कमी और ब्याज दरों का आंशिक अविनियमन शामिल हैं। यद्यपि 182 दिवसीय खजाना बिलों की नीलामी नवंबर 1986 में प्रारंभ की गई थी, अंतिम क्षण में कीमत की प्राप्ति अप्रैल 1992 में 364-दिवसीय खजाना बिलों के प्रारंभ और जनवरी 1993 में 91-दिवसीय खजाना बिलों की नीलामी प्रणाली के विस्तार के बाद ही सुधर सकी। दो पूरक करारों (बॉक्स III. 2) के साथ इन नीति उपक्रमणों से घाटों के मुद्रीकरण में काफी अधिक कमी हो सकी, जिससे मौद्रिक नीति के राजकोषीय प्रभुत्व को

सामान्य बनाने में सहायता मिली।

3.19 इस अवधि के दौरान, मौद्रिक लक्ष्य निर्धारण का सक्रियता से पालन किया गया। एम3 संवृद्धि लक्ष्यों में एक चिरंतन कमी देखी गई। इस अवधि के दौरान, वित्तीय क्षेत्र सुधारों, विशेष रूप से सरकारी प्रतिभूतियों के लिए एक सक्रिय द्वितीयक बाजार के विकास ने मध्यावधि में मौद्रिक नियंत्रण के प्रत्यक्ष उपकरणों को अप्रत्यक्ष उपकरणों की ओर ले-जाने की नींव रखी। बैंकों के लिए सांविधिक अग्रक्रयाधिकार छह वर्ष की अवधि में, 1992 के शुरू के दिनों के लगभग 63 प्रतिशत से घटा कर 35 प्रतिशत कर दिये गये थे। ब्याज दर ढांचा युक्तिसंगत बनाया गया था और मीयादी जमा दरें अविनियमित की गई थी।

3.20 उक्त अवधि को 1996-97 तक राजकोषीय घाटों में सुस्पष्ट कमी द्वारा चिह्नित किया गया था। लगभग उसी समय, 1995-96 के ऋण दबाव में कमी ने परिकल्पना से भी अधिक अर्थव्यवस्था में गिरावट में योगदान किया। इसके परिणाम स्वरूप मौद्रिक और राजकोषीय, दोनों ही नीतियां आकस्मिक कठिनाइयों का सामना कर रही हैं । 1995-96 में मौद्रिक नीति ने मुद्रास्फीति में काफी अधिक गिरावट सुनिश्चित की। किन्तु व्यापक मुद्रा संवृद्धि प्रवृत्ति से भी कम तक गिर जाने के साथ वास्तविक अर्थव्यवस्था के लिए निरंतर लागत बढ़ रही थी। यद्यपि इस अवधि के दौरान राजकोषीय मौद्रिक समन्वय में सुधार हुआ किन्तु विशेष रूप से 1995-96 के ऋण संकट जैसे स्पेल्स थे, जब बृहत समन्वित कार्रवाई से बेहतर परिणाम प्राप्त हो सकते थे।

चरण III: 2003-04 से 2007-08 तक राजकोषीय और मौद्रिक विवेक

3.21 वित्तीय क्षेत्र सुधारों के कारण रिज़र्व बैंक मौद्रिक नियंत्रण के प्रत्यक्ष उपकरणों को अप्रत्यक्ष उपकरणों में अंतरित कर सका और उसके परिणामस्वरूप 2003-04 से 2007-08 की अवधि को प्रणाली अंतरण द्वारा चिह्नित किया गया था। साथ-साथ, एफ आर बी एम अधिनियम, 2003 के अधिनियमन के साथ एक अभूतपूर्व गति से राजकोषीय सुधार प्रारंभ किये गये थे। एक साथ लिये गये इन नीति उपक्रमणों से मौद्रिक नीति पर राजकोषीय प्रभुत्व को सार्थक ढंग से घटाने में सहायता मिली। उसी समय, इस अवधि के दौरान पूंजी अंतर्वाह में उछाल से समष्टि आर्थिक प्रबंध के लिए चुनौतियां खड़ी हो गईं रिज़र्व बैंक ने पूंजी अंतर्वाह को अवरूद्ध करने के लिए अधिशेष चलनिधि को अवशोषित करने की दृष्टि से भारी मात्रा में ओ एम ओ का सहारा लिया। वास्तव में, 1990 के द्वितीयार्ध में और 2000 के शुरूआती वर्षों में ओ एम ओ चलनिधि अवशोषण प्रणाली (मोड) में थे।

3.22 सबसे महत्वपूर्ण सुधार जिससे मौद्रिक नीति के संचालन के लिए परिचालन क्रियाविधियों में सुधार हो सका वह चलनिधि समायोजन सुविधा (एल ए एफ) को चरणों में लागू करने से संबंधित है। 1998 में बैंकिंग क्षेत्र सुधार संबंधी समिति (नरसिंहम समिति II) ने एल ए एफ प्रारंभ करने की सिफारिश की थी, जिसके अंतर्गत रिज़र्व बैंक आवधिक आधार पर, यदि दैनिक आधार पर आवश्यक न हो, नीलामियां आयोजित करेगा। उक्त समिति ने परिकल्पना की कि रिज़र्व बैंक अपनी रेपो और रिवर्स रेपो दरों को पुनः निर्धारित कर सकता है जिससे मांग मुद्रा दरों के लिए एक उचित गलियारा उपलब्ध हो सकेगा। इन सिफारिशों के अनुपालन में, रिज़र्व बैंक ने रेपो और रिवर्स रेपो संचालित करने के लिए एक अंतरिम चलनिधि समायोजन सुविधा (आई एल ए एफ) प्रारंभ की थी, जिसने सामान्य पुनर्वित्त सुविधा का स्थान लिया। आइ एल ए एफ ने मुद्रा बाजार दरों में उतार-चढ़ाव को कम करने में सहायता की। जून 2000 में, आइ एल ए एफ के स्थान पर परिवर्ती दर रेपो नीलामी के साथ एल ए एफ प्रारंभ किया गया। अप्रैल 2003 में, बैक स्टॉप सुविधा के अंतर्गत चलनिधि अवशोषण/इंजेक्ट की दरों पर, दरों की विविधता को युक्तिसंगत बनाया गया था। इन परिवर्तनों से रिज़र्व बैंक मार्जिन पर चलनिधि में परिवर्तन लागू करने के लिए प्रमुख साधन के रूप में एल ए एफ का इस्तेमाल करने के लिए प्रवृत्त हो सका और रेपो/रिवर्स रेपो दरों का निर्धारण करते हुए अन्य बातों के साथ, एल ए एफ को अप्रत्यक्ष साधन के रूप में इस्तेमाल करते हुए मौद्रिक नीति का संचालन कर सका।

3.23 एफ आर बी एम अधिनियम ने जो 26 अगस्त 2003 को अधिनियमित हुआ और 5 जुलाई 2004 से प्रभावी हुआ था, घाटे की ओर झुकाव की अंतर्जात प्रवृत्ति की विवेकाधीन नीतियों को नियंत्रित करने के लिए राजकोषीय नियमों की प्रणाली को खोल दिया। उक्त कदम अंतर्राष्ट्रीय अनुभव द्वारा उत्प्रेरित था, जिसने यह दर्शाया कि भारी राजकोषीय असंतुलन का सामना कर रहे अनेक देशों ने ऐसे ही विधानों ओर नियमों के माध्यम से लाभ उठाया, जैसे कि यू के में मध्यावधि वित्तीय रणनीति, यू एस में दि ग्राम रूडमैन हॉलिंग्ज़ एक्ट, 1985 और न्यूजीलैंड में 1994 में, अर्जेंटीना में 1999 में, पेरु में 1999 तथा ब्राज़ील में 2002 में राजकोषीय उत्तरदायित्व कानून ।

3.24 उक्त अधिनियम में निर्धारित किया गया कि केंद्र सरकार को राजकोषीय घाटा घटाने और 31 मार्च 2008 तक राजस्व घाटे को निकाल देने और उसके बाद पर्याप्त राजस्व अधिशेष बढ़ाने के

लिए उपयुक्त उपाय करने चाहिए। हालांकि, 2004-05 के केंद्रीय बजट में, राजस्व घाटे को 2008-09 तक हटाने के लक्ष्य को आस्थगित कर दिया। उक्त अधिनियम ने प्राप्तियों और भुगतानों में अस्थायी बेमेल स्थिति से निपटने के लिए अर्थोपाय अग्रिमों (डब्ल्यू एम ए) के माध्यम से, को छोड़कर अथवा अपवादात्मक परिस्थितियों के सिवाय, 2006-07 से केंद्र सरकार द्वारा रिज़र्व बैंक से प्रत्यक्ष उधार लेने पर प्रतिबंध लगा दिया था।

3.25 एफ आर बी एम अधिनियम, 2003 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए केंद्र सरकार ने 5 जुलाई 2004 से प्रभावी होने वाले ''राजकोषीय उत्तरदायित्व और बजट प्रबंध नियम, 2004'' बनाये। इन नियमों के अंतर्गत 31 मार्च 2008 को समाप्त होने वाली अवधि में मुख्य घाटा संकेतकों में चरणबद्ध कटौती के लिए वार्षिक लक्ष्य निर्धारित किये गये थे। इन नियमों के अंतर्गत सरकारी गांरटियों और अतिरिक्त दायित्वों पर भी वार्षिक उच्चतम सीमा लागू की गई थी।

3.26 राजकोषीय-मौद्रिक नीति समन्वय को भी कर्ज स्वैप योजना (डी एस एस) से एक प्रोत्साहन मिला। वित्त आयोग द्वारा उक्त योजना की सिफारिश की गई थी। इससे राज्य सरकारें केंद्र से उच्च लागत पर लिये गये अपने ऋणों को नये बाजार उधारों तथा अल्प बचत के एक भाग के अंतरणों से स्थानापन्न कर सकती हैं। इस योजना के अंतर्गत राज्यों ने उच्च लागत के ऋणों की अदला-बदली (स्वैप) की । 2002-03 से 2004-05 तक (के दौरान) राज्यों ने केंद्र सरकार से लिये गये 1.02 ट्रिलियन रूपये के अपने ऋण स्वैप किये थे। उन्होंने इसका वित्तपोषण 536 बिलियन रूपये के अतिरिक्त बाजार उधारों अथवा 6.5 प्रतिशत से कम की ब्याज दरों पर 53 प्रतिशत से और शेष 9.5 प्रतिशत पर नियत ब्याज दर के साथ राष्ट्रीय अल्प बचत निधि (एन एस एस एफ) को विशेष प्रतिभूतियां जारी करने के माध्यम से किया था। यद्यपि यह योजना कर्ज-तटस्थ थी, इसने राज्य सरकारों के लिए कर्ज सर्विसिंग की लागत कम करने में दीर्घावधि लाभ प्रदान किये।

3.27 इस अवधि में राजकोषीय-मौद्रिक समन्वय का दूसरा उदाहरण बाजार स्थिरीकरण योजना (एम एस एस) के प्रारंभ के रूप में सामने आया। इस योजना का लक्ष्य मौद्रिक नीति में सुधार लाना था जिसके लिए यह अपेक्षा की गई थी कि विदेशी मुद्रा बाजारों में हस्तक्षेप के लिए अपेक्षित भारी पूंजी अंतर्वाह से उत्पन्न चलनिधि को अवरूद्ध करने के लिए उपकरणों की कमी के समक्ष उसकी प्रभावोत्पादकता समाप्त हो सकती है। अवरूद्धता का शुरूआती भार एकमुश्त लेन देनों द्वारा वहन किया गया जिनमें दिनांकित प्रतिभूतियों और खजाना बिलों की बिक्री शामिल है। हालांकि, सरकारी प्रतिभूतियों के स्टॉक के निःशेषण के कारण, चलनिधि समायोजन का भार एल ए एफ पर अंतरित हो गया। एल ए एफ को आवश्यक रूप से सीमांत चलनिधि अधिशेष/घाटों से निपटने के लिए ही बनाया गया। अधिक स्थायी प्रकृति की चलनिधि के अवशोषण के लिए बाजार स्थिरीकरण योजना (एम एस एस) पर विचार किया गया था।

3.28 भारत सरकार और भारतीय रिज़र्व बैंक ने 25 मार्च 2004 को एक सहमति ज्ञापन पर हस्ताक्षर किये और 1 अपैल 2004 को एम एस एस योजना प्रारंभ हुई थी। एम एस एस के अंतर्गत, सरकार द्वारा खजाना बिल और दिनांकित प्रतिभूतियां जारी की गई थी। एम एस एस की प्राप्तियों को एक अलग पहचान वाले नकदी खाते में सरकार के लिए उन्हें धारण करने के द्वारा अलग करते हुए रिज़र्व बैंक द्वारा रखा और परिचालित किया गया। एम एस एस खाते में जमा की गई राशियां एम एस एस के अंतर्गत जारी खजाना बिलों और/अथवा दिनांकित प्रतिभूतियों के मोचन और/ अथवा वापसी खरीद के प्रयोजन के लिए ही विनियोजित की जा सकती थी। एम एस एस प्रतिभूतियों को एस एल आर, रेपो और एल ए एफ के लिए पात्र प्रतिभूतियों के रूप में माना गया था।

3.29 काफी देशों, जैसे चिली, चीन, कोलंबिया, इंडोनेशिया, कोरिया, मलेशिया, पेरु, फिलीपीन्स, रूस, श्री लंका, ताइवान और थाइलैंड ने केंद्रीय बैंक प्रतिभूतियां जारी की हैं। तथापि, इनमें से अनेक देशों के केंद्रीय बेंकों को अपने तुलन पत्र में विकृति का सामना करना पड़ा था। उसी रूप में, एम एस एस ने मौद्रिक नीति की स्वतंत्रता के स्तर को काफी अधिक बढ़ा दिया। उसने विनिमय दर और मौद्रिक प्रबंध परिचालनों को संचालित करने की रिज़र्व बैंक की योग्यता को सुदृढ़ किया। उसने रिज़र्व बैंक को, बाद में आवश्यकता पड़ने पर चलनिधि को अवशोषित करने और प्रदान करने, दोनों के लिए एम एस एस साधन का नम्यता के साथ इस्तेमाल करने की भी सामर्थ्य प्रदान की।

चरण IV: 2008-09 से समन्वित और असमन्वित अनुक्रियाएं:

3.30 2008-09 से प्रारंभ यह अंतिम चरण रोचक है। एक ओर जहाँ वह वैश्विक वित्तीय संकट से उत्पन्न संक्रामकता के सामने उच्च स्तरीय समन्वित राजकोषीय और मौद्रिक नीति और उसके परिणामस्वरूप वैश्विक अर्थव्यवस्था में गिरावट की गवाह रही तो

दूसरी ओर राजकोषीय और मौद्रिक नीतियों ने उसे विश्वास में आकस्मिक रूप से उस हानि का सामना करने के लिए एक समन्वित प्रोत्साहन प्रदान किया जिससे देशी अर्थव्यवस्था में तेजी से सर्पिल अधोगति की स्थिति उत्पन्न हो सकती थी। लेहमैन ब्रदर्स की विफलता के पश्चात् रिज़र्व बैंक ने अक्तूबर 2008 से जनवरी 2009 तक मौद्रिक और चलनिधि सुलभता उपायों के एक घुमाव की घोषणा की। उदाहरण के लिए, दिसंबर 2008 के प्रारंभ में एक समन्वित कदम के रूप में, राजकोषीय प्राधिकारियों ने एक साथ एक पैकेज की घोषणा की जिसमें गैर पेट्रोलियम उत्पादों के लिए केंद्रीय मूल्य वर्धित कर (वैट) में सभी स्तरों पर 4 प्रतिशत अंकों की कटौती, सूक्ष्म लघु और मध्यम उद्यमों (एम एस एम ई) के लिए एक समर्थन पैकेज, निर्यातकों को सॉप और कर मुक्त बांडों के माध्यम से 100 बिलियन रूपये (लगभग 2 बिलियन अमरीकी डालर) जुटाने के लिए इंडिया इंफ्रास्ट्रक्चर फाइनैंस कंपनी लिमिटेड (आई आई एफ सी एल) को अनुमति शामिल थी। रिज़र्व बैंक द्वारा उठाये गये कदमों में, उसकी नीति दरों में 100 आधार अंकों की कटौती और 110 बिलियन रूपये का एक अतिरिक्त पुनर्वित्त पैकेज शामिल था।

3.31 वैश्विक वित्तीय संकट के परिणामस्वरूप राजकोषीय-मौद्रिक समन्वय के साथ इस बात पर समन्वय में कमी थी कि प्रोत्साहन में गिरावट से कैसे निपटा जा सकता है। परिणामस्वरूप, प्रोत्साहन से निकासी की अवधि के दौरान कुछ असमन्वित अनुक्रियाएं थी। वर्ष के दौरान एक कम निधीयन वाले बजट तथा 2008-09 के राजकोषीय प्रोत्साहन से एक उल्टा-पुल्टा बजटीय गणित शेष रह गया था। प्रारंभिक अनुमानों के मुकाबले दुगुने से भी अधिक बाजार उधारों के कारण राजकोषीय और मौद्रिक प्राधिकारियों के बीच खेले जाने हेतु 'गेम ऑफ चिकन' के लिए जैसे सेटिंग उपलब्ध हो गया था। (बॉक्स III.3)

बॉक्स III.3

मौद्रिक और राजकोषीय नीति पारस्परिक क्रिया और चूजे का खेल (गेम ऑफ चिकन)

समष्टि आर्थिक प्रबंध के लिए मौद्रिक और राजकोषीय नीतियों में समन्वय की आवश्यकता है। व्यवहार में, यह समन्वय कभी-कभी एक गेम-थियोरेटिक वातावरण उत्पन्न कर देता है जिसमें राजकोषीय और मौद्रिक प्राधिकारी एक दो-व्यक्ति गैर सहकारी गेम का सामना करते हैं। बीटर (2010) के वर्णन के अनुसार, यूरो क्षेत्र में केंद्रीय बैंक और राजकोष की पारस्परिक क्रिया के विश्लेषण के लिए इस्तेमाल किये जाने वाले 'गेम ऑफ चिकन' के अंतर्गत यह मान्यता है कि केंद्रीय बैंक और राजकोषीय प्राधिकारी प्रायः यह देखने के लिए एक दूसरे की जांच करते हैं कि कौन पहले आँख झपकाता है और दूसरे को स्थान देने के लिए अपेक्षित समायोजन करता है।

गेम ऑफ चिकन में, जिसे हॉक-डव अथवा स्नोड्रिफ्ट गेम के रूप में भी जाना जाता है, प्रत्येक खिलाड़ी दूसरे खिलाड़ी के सामने हार नहीं मानना चाहता है और सबसे बदतर नतीजों की संभावना तो तब होती है जब दोनों ही खिलाड़ी समर्पण के लिए तैयार नहीं होते हैं। इस गेम को समझने के लिए आसान, वास्तविक जीवन की वह स्थिति है जब दो कार ड्राइवरों की आमने-सामने की टक्कर हो जाती है। दोनों में से एक ड्राइवर को ऐसी भिड़ंत से बचने के लिए जो दोनों को मार सकती है, गाड़ी घुमा लेनी चाहिए थी, किन्तु यदि जो ड्राइवर गाड़ी घुमा लेता है, वह ''चिकन'' या कायर कहलाता है। भुगतानों के अनुसार, आमने-सामने की टक्कर के मामले में दोनों को भारी हानि होने की तुलना में गाड़ी घुमाने से होने वाली हानि (अथवा ''चिकन'' कहलाना) कुछ भी नहीं है। एक विशिष्ट भुगतान उदाहरण निम्नानुसार है:

	घुमाना	आमने-सामने जाना
घुमना	(0,0)	(-1,+1)
आमने-सामने जाना	(+1,-1)	(-10, -10)

विशुद्ध रणनीति संतुलन वे हैं जिनमें एक खिलाड़ी समर्पण कर देता है और दूसरा नहीं। किन्तु, समन्वय के अभाव में, कोई भी यह नहीं जान सकता कि दूसरा समर्पण कर देगा और इसलिए उचित रणनीति तो यह है कि आत्मघाती टक्कर से पूर्व ही समर्पण कर दिया जाए। किन्तु यदि एक इस बात में विश्वास करता है कि उसका विरोधी उचित है, एक यह निश्चय कर लेता है कि वह कभी भी समर्पण नहीं करेगा तो उसे बदतर नैश-टाइप परिणाम भुगतने होंगे।

यूरोपीय केंद्रीय बैंक (ई सी बी) और यूरो क्षेत्र के अनेक राष्ट्रीय राजकोषीय प्राधिकारियों के बीच ताजा रणनीतिक पारस्परिक क्रिया गेम ऑफ चिकन का एक ऑफ साइटेड उदाहरण रहा है। ई सी बी उपविधि में अधिदेश है कि कीमत स्थिरता का प्रयास किया जाए और अन्य किसी उद्देश्य को पाने का तभी प्रयास किया जाए जब वह कीमत स्थिरता के मुख्य उद्देश्य के विरूद्ध न हो। हालांकि राजकोषीय प्राधिकारियों के साथ, उसके कुछ सदस्य देशों में, जो राष्ट्रिक कर्ज संकट का सामना कर रहे हैं, वहाँ ऋण शोधन क्षमता सुनिश्चित किया जाना यदि सुस्पष्ट लक्ष्य नहीं है तो भी एक निकटस्थ लक्ष्य बन गया है। ई सी बी ने इस बात को जान लिया कि पी आइ आइ जी एस (पुर्तगाल, आयरलैंड, इटली, युनान, और स्पेन) में से किसी भी देश में एक राष्ट्रिक चूक से अनियंत्रणयोग्य संक्रामक भड़क सकता है जिससे वित्तीय स्थिरता और संवृद्धि के लिए जोखिम उपस्थित हो जाएगा जिसे नियंत्रित करना कठिन होगा।

ई सी बी के लिए यह देखा गया है कि वह कीमत और वित्तीय स्थिरता चाहता है, जब कि राजकोषीय सरकारें चाहती हैं कि सरकारी कर्ज पर चूक को टालने के लिए ई सी बी वित्तपोषण करे। राजकोषीय प्राधिकारी ई सी बी को इस बात के लिए प्रोत्साहन दे सकते हैं कि वह अपने तुलन पत्र पर राष्ट्रिक तथा निजी ऋण जोखिम को लेते हुए अर्ध-राजकोषीय क्रियाकलापों का उत्तरदायित्व ले। किन्तु, ई सी बी की चिन्ता यह है कि उसके द्वारा ली

(जारी...)

(...समाप्त)

जाने वाली कोई भी मात्रात्मक सुलभता (क्यू ई) अस्फीतिकारक होनी चाहिए। आधार मुद्रा की आपूर्ति करने में ई सी बी का एकाधिकार है और इसलिए सिक्का ढलाई-मुनाफा के लाभ प्रारंभ में कम से कम उसके द्वारा विनियोजित किये जाते हैं। तथापि, दिसंबर 2011 से, ई सी बी के 3 वर्षीय दीर्घावधि रेपो परिचालन (एल टी आर ओ) के परिणाम के रूप में सरकारी कर्ज का मुद्रीकरण किसी रूप में हुआ हो सकता है।

वैश्विक वित्तीय संकट के प्रारंभ से पहले ही बीटर और साइबर्ट (2005) ने ई सी बी की परिचालन क्रियाविधियों में एक मूलभूत परिवर्तन करने का प्रस्ताव रखा था जिसका लक्ष्य बाजार अनुशासन की पुनः स्थापना तथा अधारणीय राजकोषीय घाटे का सामना करना था। यह देखा गया था कि ई सी बी गेम ऑफ चिकन में फस्ट मूवर एडवांटेज को पुनः स्थापित करने का प्रयास कर रहा है। कीमत स्तर संबंधी राजकोषीय सिद्धांत एफ टी पी एल बताता है कि इस खेल में राजकोषीय प्रभुत्व है अथवा मौद्रिक प्रभुत्व, इस बात पर निर्भर करते हुए राजकोषीय प्रभुत्व से उच्च मुद्रास्फीति - भी सकती है और नहीं भी हो सकती है। राजकोषीय प्रभुत्व के मामले में अनियंत्रित घाटा बढ़ जाता है जो अन्ततः केंद्रीय बैंक को इस तरफ ध्यान देने और घाटे का मुद्रीकरण करने के लिए बाध्य करता है, अर्थात् सिक्का-ढलाई मुनाफा बढ़ाना तथा बहिर्जात राजकोषीय घाटा पथ के वित्तपोषण के लिए मुद्रास्फीति कर का इस्तेमाल करना। यदि मौद्रिक प्रभुत्व की स्थिति है तो केंद्रीय बैंक घाटे का मुद्रीकरण न करने का निर्णय लेता है और तब राजकोषीय प्राधिकारी इस तरफ ध्यान देने और खर्च में कटौती करके अथवा अपने अंतर-कालिक बजट दबावों को पूरा करने के लिए करों में वृद्धि करने के लिए बाध्य होता है। यदि कोई भी प्राधिकारी इस स्थिति पर ध्यान नहीं देता है तो ब्याज दरों के बढ़ने तथा कर्ज गति सिद्धांत के बदतर होने के कारण घाटे का जोखिम बढ़ जाता है।

एफ टी पी एल, सार्जेंट एण्ड वालेस (1981) के अरूचिकर मुद्रावादी गणित का समाधान प्रस्तुत करता है जो समष्टि आर्थिक प्रबंध में गेम ऑफ चिकन के लिए एक समाधान उपलब्ध कराता है। सेमीनल 1981 पेपर में ''सम अन्प्लेजेंट मोनेटरिस्ट अर्थमेटिक'' शीर्षक के अंतर्गत उन्होंने दर्शाया है कि एक अल्पावधि में मुद्रास्फीति के एक मौद्रिक तथ्य होते हुए भी वह दीर्घावधि में एक राजकोषीय तथ्य बना रहता है। ऐसा सरकार के बजट दबावों तथा निजी क्षेत्र द्वारा रखी जाने वाली सार्वजनिक कर्ज-सीमाओं के बाद होता है। इसके साथ ही, ये सुनिश्चित करते हैं कि दीर्घावधि में मुद्रा स्टॉक में संवृद्धि राजकोषीय घाटे द्वारा अधिशासित होती है क्योंकि राजकोषीय प्राधिकारी स्टैकलबर्ग लीडर के रूप में कार्य करते हैं, जब कि मौद्रिक प्राधिकारी स्टैकलबर्ग फोलोअर के रूप में कार्य करते हैं। स्टैकलबर्ग मॉडल अर्थशास्त्र में एक रणनीतिक गेम है जिसमें लीडर फर्म पहले चाल चलती है, जबकि फोलोअर फर्म अनुक्रमिक रूप से चाल चलती है, और वह जानी-मानी कीमत निर्धारक पहेलियों का एक समाधान प्रस्तुत करती है। एफ टी पी एल, मूलतः यह सूचित करता है कि सरकार का वर्तमान समेकित मूल्य बजट दबाव, सरकारी व्यवहार पर एक दबाव के बजाय एक इष्टतमता स्थिति है और यह दर्शाती है कि धन प्रभाव की रिकार्डियन और गैर-रिकार्डियन धारणाएं किस प्रकार कीमत निर्धारण और घरेलू खपत में अपनी भूमिका निभाती है। एफ टी पी एल के मजबूत प्रकार आश्चर्यजनक मामले प्रस्तुत करते हैं जहाँ यह नो ब्लिंक टू साइडेड गेम यह सुनिश्चित करने के लिए प्रारंभिक कीमत स्तर (उच्च मुद्रास्फीति) के एक उछाल की ओर ले जाता है कि सरकार के अन्तर-कालिक बजट दबाव का समाधान हो जाता है। वास्तविक जगत में, गेम ऑफ चिकन में सामान्यतः राजकोषीय प्रभुत्व का शासन होता है और मौद्रिक प्रभुत्व अपवाद स्वरूप पाया जाता है। भारत इस सामान्य नियम से भिन्न नहीं है। बृहत राजकोषीय घाटे कभी-कभी ''गेम ऑफ चिकन'' जैसी स्थिति उत्पन्न करने की एक वजह बन जाते हैं। यदि केंद्रीय बैंक अपने रणनीति प्राक्कलनों में कर्ज वित्तपोषण का निभाव न करते हुए अपने मौद्रिक उद्देश्यों का अनुसरण करते हैं तो राजकोषीय और मौद्रिक, दोनों ही प्राधिकारियों के लिए तथा साथ ही समग्र रूप से अर्थव्यवस्था के लिए भी समष्टि आर्थिक परिणाम निकृष्ट हो सकते हैं। उसी रूप में, समष्टि आर्थिक प्रबंध, अनर्थकारी परिणामों से बचने की अनिवार्यता रखते हुए किये जाने होते हैं।

संदर्भ

बीटर, विलियम्स और एन सी साइबर्ट (2005), ''हाउ दि यूरोसिस्टम्स ट्रीटमेंट ऑफ कॉलेटरल इन इट्स ओपन मार्केट ऑपरेशन्स वीकन्स फिसकल डिसीप्लीन इन दि यूरोजोन (एण्ड व्हाट टू डू एबाउट इट),'' 30 जून - 1 जुलाई 2005 तक ''फिसकल पॉलिसी एण्ड दि रोड टू दि यूरो'' विषय पर नैशनल बैंक ऑफ पोलेण्ड और दि सेंट्रल बैंक ऑफ हंगरी द्वारा वारसा में आयोजित सम्मेलन।

लिबिच, जन, डैट थान्ह गुयेन एंड पीटर स्टेहिक (2001), ''मोनेटरी एग्जिट स्ट्रेटेजी एंड फिसकल स्पिलओवर्स,'' सी ए एम ए वर्किंग पेपर 4@2011, आस्ट्रेलियन नैशनल यूनिवर्सिटी।

रैपोपोर्ट, ए और ए.एम. चामाह (1966), ''दि गेम ऑफ चिकन'', अमेरिकन बिहेवियर साइंटिस्ट, 10 सारजेंट, टी. और एन. वालेस (1981), ''सम अन्प्लेजेंट मोनेटरिस्ट अर्थमटिक,'' फेडरल रिज़र्व बैंक ऑफ मिनियापोलिस, क्वार्टरली रीव्यू 1-17।

3.32 हालांकि, भारत में 'गेम ऑफ चिकन' स्थितियों को न्यूनतम करने की दृष्टि से सहकारी ढांचा अपनाने के द्वारा राजकोषीय प्रभुत्व में काफी अधिक कमी हुई है। अनुपूरक करार, दि एफ आर बी एम अधिनियम, दि फाइनैंस कमीशन रिपोर्ट्स और बाजार स्थिरीकरण योजना (एम एस एस) सभी ऐसे उदाहरण हैं जिन्होंने राजकोषीय-मौद्रिक नीति पारस्परिक क्रिया के लिए सहकारी रणनीतियां विकसित करने में योगदान किया है। प्रायः दोनों ही प्राधिकारियों ने औपचारिक अथवा अनौपचारिक रूप से एक दूसरे से अपनी योजनाओं के बारे में चर्चा की और/अथवा 'गेम ऑफ चिकन' स्थिति विकसित होने से पूर्व उन्होंने अपने इरादों को बड़े युक्तियुक्त तरीके से एक दूसरे को बता दिया था। समन्वय को आगे बढ़ाने के लिए विश्वसनीय रूप से संकेत देना एक उपयोगी रणनीति है। राजकोषीय प्राधिकारियों के लिए मुड़ने हेतु राजकोषीय नियम विश्वसनीय संकेत देने के सर्वोत्तम रूप हैं। किन्तु, ये नियम तनाव की घटनाओं में अथवा राजनैतिक चक्रों के कारण विश्वासघाती हो गये हैं।

3.33 वर्ष 2008-09 एक उदाहरण के रूप में साबित हुआ जब केंद्र सरकार का जी एफ डी/जी डी पी 2.5 प्रतिशत के बजटीय घाटे के सम्मुख 6.0 प्रतिशत था और निवल बाजार उधार बजट अनुमान के 1 ट्रिलियन रूपये की तुलना मैं 2.34 ट्रिलियन रूपये था। राजकोषीय गिरावट अभूतपूर्व थी। राजकोषीय प्राधिकारियों ने इस प्रकार की गिरावट के बारे में पहले सुस्पष्ट रूप से संकेत नहीं दिये थे और पिछली तिमाही में अचानक भारी अतिरिक्त बाजार उधार 10 वर्ष के बेंच मार्क प्रतिफल में परिणत हो गये जो दिसंबर 2008 में गिरकर 5.0 प्रतिशत हो गये और मार्च 2009 के अंत में 200 आधार अंक बढ़ कर 7.0 प्रतिशत हो गये। यह इस सबके बावजूद हुआ था कि रिज़र्व बैंक ने, मौद्रिक नीति के अभूतपूर्व सुलभता का आश्रय लिये जाने के समय संभावित ब्याज दर आघात को टालने के लिए 2008-09 की अंतिम तिमाही में लगभग 890 बिलियन रूपये की एकमुश्त खुला बाजार खरीद की थी।

3.34 2009-10 के दौरान जी एफ डी- जी डी पी अनुपात 6.5 प्रतिशत के बजट-घाटे के समक्ष 6.4 प्रतिशत हो गया था। निवल बाजार उधार की राशि बजट राशि के अनुरूप 3.98 ट्रिलियन रूपये थी। इसके समक्ष, सरकार ने वर्ष 2010-11 में स्पेक्ट्रम नीलामियों और निर्निहितीकरण (डिवेस्टमेंट) के माध्यम से अप्रत्याशित रूप से एकल राजस्व प्राप्त किया जिससे अस्थायी राजकोषीय समेकन में सहायता मिली। परिणामस्वरूप, जी एफ डी- जी डी पी अनुपात गिरकर 4.6 प्रतिशत हो गया, जो 5.5 प्रतिशत के बजट स्तर निर्धारण से काफी कम था। वर्ष 2011-12 में फिर से राजकोषीय गिरावट देखी गई और बजट में अनुमानित 4.6 प्रतिशत के स्तर में 1.3 प्रतिशत की गिरावट हो गई। वर्ष के प्रारम्भ में, केंद्रीय बैंक विश्वसनीय रूप से कठोर मौद्रिक नीति बनाये रखने के लिए वचनबद्ध था, किन्तु लगभग 2 ट्रिलियन रूपये के अतिरिक्त बाजार उधारों (खजाना बिलों को शामिल करते हुए) ने कुछ उर्ध्वमुखी दबाव बना दिया। हालांकि, अगस्त 2011 से बाजार में अस्थिरता पर नियंत्रण करने के लिए विदेशी मुद्रा में भारतीय रिज़र्व बैंक के हस्तक्षेप को शामिल करते हुए और भी अनेक कारणों से चलनिधि को अत्यधिक कठोर बनाया गया। इसलिए ओ एम ओ खरीद एक बृहत सीमा तक अत्यधिक कठोर चलनिधि स्थितियों में कटौती के केंद्रीय बैंक के उद्देश्य के अनुरूप थी। गेम ऑफ चिकन से बचते हुए, कठोर राजकोषीय और मौद्रिक नीति के नियमों का अनुसरण करना तथा इन नियमों के प्रति विश्वसनीय रूप से प्रतिबद्ध रहना सर्वोत्तम है। इन नियमों में कुछ अंतर्जात लचीलापन होना चाहिए ताकि आर्थिक के अतिरिक्त राजनैतिक चक्रीयता को संतुष्ट किया जा सके किन्तु ढांचागत घाटे के विस्तार से बचा जा सके।

3.35 प्रोत्साहन के प्रावधान की तुलना में प्रोत्साहन से निकासी काफी कम समन्वित थी। केंद्रीय मूल्य वर्धित कर (सी ई एन वी ए टी) वापस लिये जाने की योजना आस्थगित हो जाने से मौद्रिक नीति पर कर्ज के मुद्रीकरण का अतिरिक्त दबाव पड़ा। यह स्पष्ट नहीं था कि प्रोत्साहन को वापस लेते समय कौन बाज होगा और कौन फाख़ता (डॅव) होगी। दीर्घ काल तक शीघ्र सुधार को बनाये रखने का टिकाऊ पन अनिश्चित रहा तथा कीमत दबाव अस्पष्ट बने रहे। मौद्रिक नीति ने फिर से निकासी भार के बृहत भाग का निभाव किया। वैश्विक वित्तीय संकट के बाद आने वाले राजकोषीय घाटे के व्यापक होने में एक बृहत् ढांचागत घटक है जो राजकोषीय-मौद्रिक समन्वय को नियंत्रित करता है। 2012-13 में सरकार द्वारा स्वीकृत संशोधित राजकोषीय रूपरेखा (रोडमैप) अंशतः कोर्स करेक्शन सेट करेगी। हालांकि संशोधित रूपरेखा पहले से ही 2011-12 से निर्धारित की गई अनुक्रिया है जो महत्वपूर्ण समष्टि आर्थिक गिरावट का मुकाबला करने के लिए बनाई गई थी। उक्त रोडमैप राजकोषीय समेकन की गुणवत्ता के प्रश्न का पर्याप्त रूप से समाधान नहीं करता है। राजस्व के गैर-टिकाऊ संसाधनों, सब्सिडी की अपर्याप्त काट-छाँट और इस राजकोषीय समेकन रणनीति के भाग के रूप में पूंजी व्यय में अवांछित कटौती पर अत्यधिक निर्भरता रही है।

IV. मुद्रास्फीति प्रबंध में राजकोषीय और मौद्रिक समन्वय

3.36 निम्न और स्थिर मुद्रास्फीति स्तर बनाये रखना समष्टि आर्थिक नीति का एक प्रमुख लक्ष्य है। चूंकि मुद्रास्फीति को एक मौद्रिक तथ्य के रूप में परंपरागत मुद्रावादी दृष्टिकोण से देखा जाता है, मौद्रिक नीति की मुद्रास्फीति प्रबंध के लिए एक प्रमुख साधन के रूप में सिफारिश की जाती है। तथापि मुद्रास्फीति नियंत्रण में राजकोषीय नीति की भूमिका को भी सकल मांग और मुद्रास्फीति के अतिरिक्त करों व सब्सिडी की उसकी नीति के माध्यम से अल्पावधि-मुद्रास्फीति प्रबंध पर उच्च राजकोषीय घाटे के प्रभाव की दृष्टि से मान्यता प्रदान की गई है। राजकोषीय घाटे और मुद्रास्फीति के बीच दुतरफा पारस्परिक क्रिया से भी, कीमत स्थिरता के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए मौद्रिक और राजकोषीय नीतियों के बीच इष्टतम समन्वय स्थापित करना महत्वपूर्ण होगा। इस खंड में मुद्रास्फीति प्रबंध में राजकोषीय और मौद्रिक नीतियों की भूमिका तथा मुद्रास्फीति पर इन नीतियों के बीच पारस्परिक क्रिया के निहितार्थों को समझने का प्रयास किया गया है।

मुद्रास्फीति और राजकोषीय बनाम मौद्रिक नीति

3.37 परंपरागत आर्थिक सिद्धांत इस विचार को बढ़ावा देता है कि मौद्रिक नीति को प्रति-चक्रीय नीतियों के माध्यम से व्यवसाय चक्र स्थिरीकरण पर फोकस करना चाहिए जब उत्पादन को मांग की ओर के आधात हों और मुद्रास्फीति का प्रभुत्व हो, जब कि राजकोषीय नीति को, कर्ज-घाटा गति सिद्धांत से उत्पन्न अंतर-कालिक और अंतर-जनरेशनल बजट दबावों को ध्यान में रखते हुए आपूर्ति की ओर के आघातों के प्रभाव स्थिर करने पर फोकस करना चाहिए । इस प्रकार के तर्क का बुनियादी सैद्धांतिक आधार वाक्य यह है कि दीर्घीकृत उच्च मुद्रास्फीति सामान्यतया मौद्रिक कारणों से होती है। इसके अलावा, उच्च मुद्रास्फीति सामान्यतया उच्च संकलित मांग का परिणाम है और मौद्रिक नीति के माध्यम से संकलित मांग पर बेहतर ढंग से नियंत्रण किया जा सकता है।

3.38 अल्पावधि और दीर्घावधि, दोनों ही प्रभावों के अनुसार राजकोषीय नीतियों और मुद्रास्फीति के बीच सहबद्धता के संबंध में एक विशाल अनुभवजन्य साहित्य भी है (रोदर, 2004) । उच्च राजकोषीय घाटे का मुद्रास्फीति पर प्रभाव दो अलग-अलग कोणों से देखा जाता है। राजकोषीय घाटे में वृद्धि में सरकार के बढ़े हुए खर्च शामिल होंगे, जिनसे समग्र मांग में वृद्धि हो सकती है और यह मुद्रास्फीतिकारक हो सकता है, यदि अर्थव्यवस्था उत्पादन के संभाव्य स्तर पर अथवा उससे ऊपर के स्तर पर कार्य कर रही हो। किन्तु, यदि आर्थिक संवृद्धि संभाव्य स्तर से कम है तो अल्पावधि में राजकोषीय विस्तार मुद्रास्फीति को नहीं बढ़ा सकता है। यह तर्क किया गया है कि अभूतपूर्व राजकोषीय प्रोत्साहन जो भारत में वैश्विक आर्थिक संकट के दौरान प्रयोग में लाया गया था, उसका मुद्रास्फीति पर कोई तात्कालिक प्रभाव नहीं पड़ा था क्योंकि उसने प्राथमिक रूप से उपभोग तथा निवेश मांग में गिरावट को आंशिक रूप से प्रतिसंतुलित करने के एक साधन के रूप में कार्य किया था। (रिज़र्व बैंक वार्षिक रिपोर्ट, 2009-10)।

3.39 मुद्रास्फीति पर राजकोषीय घाटे का अल्पावधि प्रभाव नीतियों के मिश्रण पर भी निर्भर कर सकता है जिसे सरकार समष्टि आर्थिक प्रबंध के लिए शुरू करने हेतु योजना बनाती है। यदि राजकोषीय घाटा अप्रत्यक्ष करों में कमी के कारण बढ़ता है, जैसे कि वैश्विक संकट के तुरंत बाद की अवधि में भारत में अधिकांश विनिर्मित उत्पाद के लिए उत्पाद कर में कमी की गई थी, इसका अंतिम कीमतों पर एक मंदक प्रभाव पड़ता है। उसी प्रकार, प्रजातिगत सब्सिडी में वृद्धि कीमतों को बाजार समाशोधन कीमतों से कम रख सकती है, इस प्रकार मुद्रास्फीति को अल्पावधि में दबा कर रखा जाता है। दूसरी ओर, अंतिम उपभोक्ता को सीधे नकद हस्तांतरण के रूप में सब्सीडी प्रदान करने से वह अल्पावधि में मुद्रास्फीतिकारक हो सकती है क्योंकि बढ़ी हुई मांग से कीमतों में वृद्धि हो सकती है। अल्पावधि मुद्रास्फीति पर न्यूनतर राज कोषीय घाटे का प्रभाव इस बात पर निर्भर करते हुए अलग-अलग भी हो सकता है कि घाटे में कमी किस प्रकार से की गई है। यदि राजकोषीय घाटे को कम करने के लिए अप्रत्यक्ष करों में वृद्धि को एक साधन के रूप में इस्तेमाल किया गया है तो अंतिम कीमतें अल्पावधि में बढ़ सकती हैं। प्रजातिगत सब्सिडी में कमी के कारण अल्पावधि मुद्रास्फीति बढ़ सकती है किन्तु मध्यावधि में इसका मुद्रास्फीति पर अनुकूल प्रभाव होगा।

3.40 चिरस्थायी राजकोषीय घाटे से कभी न कभी मुद्रा निर्माण करना होता है जिसके मुद्रास्फीतिकारक परिणाम होंगे। सार्जेंट और वॉलेस यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि राजकोषीय प्रभुत्व की स्थितियों के अंतर्गत मुद्रास्फीति एक राजकोषीय समस्या से भी अधिक समस्या के रूप में सामने आ सकती है। राजकोषीय प्रभुत्व व्यवस्था तथा मुद्रास्फीति के बीच सहबद्धता का पता लगाने संबंधी प्रायोगिक कार्य में यह दर्शाया गया है कि सरकारें प्रायः राजकोषीय तनाव के समय के दौरान सिक्का ढलाई मुनाफा (अथवा मुद्रास्फीति कर) का सहारा लेती हैं जिसके मुद्रास्फीतिकारक परिणाम हुए हैं।

3.41 दीर्घावधि-प्रवृत्तियों की ओर नज़र डालने वाले अध्ययनों द्वारा यह प्रमाणित करने का प्रयास किया गया है कि किस सीमा तक बृहत् और चिरस्थायी घाटा स्तर मुद्रास्फीति को प्रभावित करते हैं। दूसरी ओर अल्पावधि अध्ययन राजकोषीय नीतियों में परिवर्तनों के प्रभाव पर फोकस करते हैं, अर्थात् मुद्रास्फीति पर राजकोषीय आघातों का प्रभाव। 'एफ टी पी एल' पर आधारित हाल की सैद्धांतिक गतिविधियां यह सुझाव देती हैं कि मध्यावधि कीमत स्थिरता के लिए केवल उपयुक्त मौद्रिक नीति की ही आवश्यकता नहीं होती बल्कि उपयुक्त राजकोषीय नीति की भी आवश्यकता होती है। यह सिद्धांत सरकार के अंतर-कालिक बजट दबावों की पूर्ति सुनिश्चित करने के लिए निर्णायक समायोजन परिवर्ती के रूप में कीमत स्तर पर विचार करता है। यह दबाव, वास्तविक रूप में, सरकार की चालू देयताओं को सरकारी राजस्व के निवल वर्तमान मूल्य से समीकृत करता है, अर्थात मुद्रा निर्माण से भावी प्राथमिक अधिशेष और राजस्व। ऐसी स्थिति में जब रिकार्डियन समानता स्थिर नहीं रहती है और मजबूती से प्रतिबद्ध तथा स्वतंत्र केंद्रीय बैंक के साथ, अंतर-कालिक बजट दबाव में असंतुलनों को कीमत स्तर में बदलाव के माध्यम से समायोजित करने की आवश्यकता होती है।

3.42 ये सभी सैद्धांतिक अनुपात इस आधार वाक्य पर आधारित राजकोषीय नीति और मुद्रास्फीति के बीच सहबद्धता की तलाश करते हैं कि राजकोषीय नीति मुद्रास्फीति का एक कारण है, वह मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने का साधन नहीं है। किन्तु, जब मुद्रास्फीतिकारक दबाव आपूर्ति पक्ष से उत्पन्न होता है तो मुद्रास्फीति नियंत्रण के लिए एक साधन के रूप में राजकोषीय नीति की भूमिका निर्णायक हो जाती है। आपूर्ति में अचानक कमी से सामान्यतया सापेक्ष कीमतें प्रभावित होती हैं क्योंकि कुछ वस्तुओं की कीमतें कीमत स्तर में सामान्य वृद्धि की तुलना में अधिक बढ़ जाती हैं। इस प्रकार, अल्पावधि स्थिरीकरण की समस्या में सभी प्रकार के आघातों के प्रति राजकोषीय अनुक्रिया शामिल हो सकती है, उनमें से कुछ विकृतिकारक हो सकते हैं क्योंकि कीमतों को नाममात्र की अनम्यता द्वारा पहचाना जाता है। राजकोषीय नीति कर दरों/सब्सिडी के परिवर्तनों को प्रति संतुलित करते हुए लागत-प्रेरित आघातों को कम कर सकती है। इस प्रकार राजकोषीय नीति अधिक प्रभावी ढंग से लागत-प्रेरित मुद्रास्फीति को प्रभावित कर सकती है। किन्तु, लागत-प्रेरित आघातों को अकेले राजकोषीय अथवा मौद्रिक नीति द्वारा हटाया नहीं जा सकता, क्योंकि वे सामान्यतया विपरीत दिशा में उत्पादन अंतराल और मुद्रास्फीति के बीच संबंध को प्रभावित करते हैं (किर्सानोवा और अन्य, 2009)। आपूर्ति में अचानक कमी प्रारंभ में सापेक्ष कीमतों को प्रभावित करती है, किन्तु मजदूरी कीमत सर्पिल गति से दूसरे दौर के प्रभाव के माध्यम से उसमें अधिसमय में सामान्यीकरण की प्रवृत्ति आ जाती है। इसलिए, मौद्रिक नीति को मुद्रास्फीति प्रत्याशाओं पर अंकुश लगाते हुए सामान्यीकृत मुद्रास्फीति की स्थिति बनाने वाली आपूर्ति में अचानक कमी के खिलाफ बचाव करना होगा।

भारत में मुद्रास्फीति की प्रकृति और राजकोषीय और मौद्रिक नीति की भूमिका

3.43 आपूर्ति में बारंबार अचानक कमी होना एक मुख्य कारण है जो भारत में मुद्रास्फीति पथ को प्रभावित करता है। 1952-53 से, यह विचार करते हुए कि 5-6 महीने में दो अंकीय मुद्रास्फीति इतनी ऊँची है कि भारत के लिए उच्च मुद्रास्फीति के नौ एपीसोड्स अभिनिर्धारित किये जा सकते हैं (मोहंती, 2010)। आपूर्ति पक्ष के कारण, जैसे सूखा, युद्ध, तेल और अंतर्राष्ट्रीय पण्य कीमत आघात इन देखे गये अधिकांश मुद्रास्फीति कीलों (स्पाइक) के पीछे मुख्य कारण रहे हैं। हाल की अवधि में मुद्रास्फीति अनुभव का एक विश्लेषण यह दर्शाता है कि पिछले 20 वर्षों में समग्र थोक मूल्य सूचकांक मुद्रास्फीति में 'खाद्य' और 'ईंधन' समूह का भारित योगदान उनके 20 वर्षों में से 16 में संयुक्त भार से अधिक था

चार्ट III.2: समग्र मुद्रास्फीति में खाद्य और ईंधन का भारित अंशदान

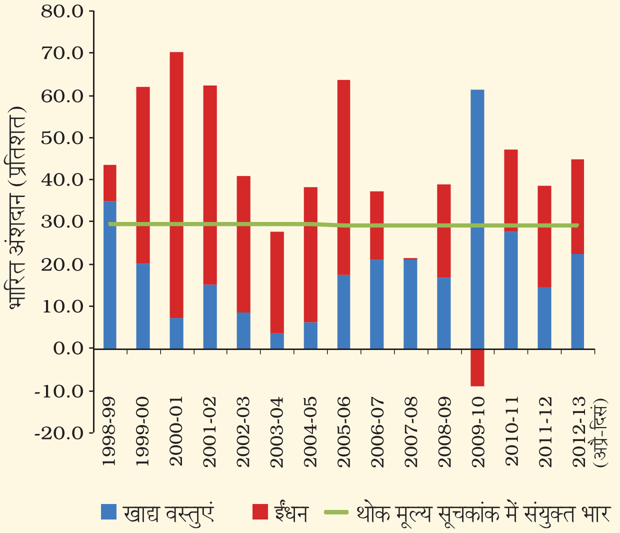

(चार्ट III.2) यह मुद्रास्फीति की ढांचागत प्रकृति की ओर संकेत करता है, क्योंकि यदि आपूर्ति में अचानक कमी को अस्थायी होना माना जाता है तो खाद्य अथवा ईंधन में उच्च मुद्रास्फीति के बाद अनुवर्ती अवधि में उसी वर्ग में कम मुद्रास्फीति होने की संभावना मानी जाती है और इसके द्वारा मुद्रास्फीति के स्थायीत्व को भंग किया जाता है। ढांचागत मुद्रास्फीति की स्थिति में, मुद्रास्फीति से निपटने के लिए परंपरागत मौद्रिक नीति साधन इतने प्रभावी नहीं हो सकते हैं इसलिए मुद्रास्फीति प्रबंध को उच्चतर राजकोषीय घाटे के जोखिम पर ध्यान दिये बिना जो मुद्रास्फीतिकारक भी हो सकता है, असंतुलनों को सही करने के लिए राजकोषीय हस्तक्षेप करने की आवश्यकता होगी। उच्चतर सब्सिडी के साथ राजकोषीय हस्तक्षेप ही अल्पावधि में मुद्रास्फीति को दबा सकता है, जो अधिसमय में सुस्पष्ट हो जायगा। दूसरी ओर, उच्चतर पूंजी व्यय के माध्यम से आपूर्ति में वृद्धि करने के लिए किये गये राजकोषीय हस्तक्षेप से राजकोषीय घाटा बढ़ सकता है, किन्तु मध्यावधि में उससे मुद्रास्फीति पर नियंत्रण हो सकता है।

3.44 1990 के वर्षों के द्वितीयार्ध से समग्र मुद्रास्फीति में 'गैर-खाद्य गैर-ईंधन' मुद्रास्फीति का अंशदान कुछ हद तक कम हुआ है, जब कि आपूर्ति में अचानक कमी ने मुद्रास्फीति को काफी अधिक अस्थिर रखा है (चार्ट III.3)।

3.45 समग्र मुद्रास्फीति में आपूर्ति में अचानक कमी से उत्पन्न मुद्रास्फीति का कारण-कार्य संबंध इस बात का संकेत देता है कि ईंधन समूह की मुद्रास्फीति सामान्यीकृत मुद्रास्फीति में अंतरित हो

चार्ट III.3: मुद्रास्फीति अस्थिरता और परिवर्तनशील अंशदान

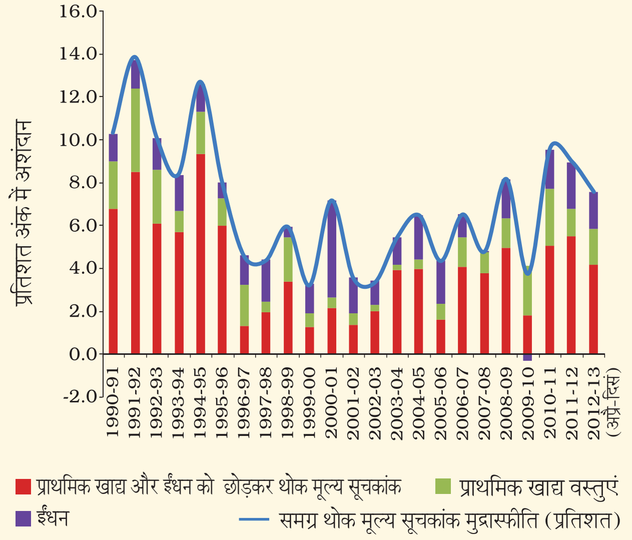

जाती है, जब कि इस प्रकार का प्रभाव खाद्य मुद्रास्फीति के मामले में नहीं दिखाई देता है (सारणी 3.1)। कारण-कार्य संबंध जांच इस ओर संकेत करती है कि ईंधन मुद्रास्फीति खाद्य मुद्रास्फीति में अंतरित नहीं होती है, शायद इस बात की ओर संकेत करते हुए कि कृषि के लिए वित्तीय सहायता प्राप्त ईंधन से प्रभाव का अंतरण सीमित हो जाता है। यद्यपि खाद्य मुद्रास्फीति सामान्यीकृत मुद्रास्फीति का प्रत्यक्ष रूप से कारण नहीं है तथापि वह मजदूरी-कीमत सर्पिल गति के माध्यम से सामान्यीकृत मुद्रास्फीति को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कर सकती है।

3.46 आपूर्ति में अचानक कमी के लिए देशी और विदेशी, दोनों ही कारण जिम्मेवार हैं। जहाँ देशी कारण अधिकांशतः कृषि क्षेत्र से

सारणी 3.1: खाद्य, ईंधन और मूल मुद्रास्फीति के बीच जोड़े-वार ग्रेंजर कारणता जांच

अवधि: अप्रैल 1996- मार्च 2012

अकृत प्राक्कल्पना:	एफ. आंकड़े	प्रॉब
खाद्य ईंधन का ग्रेंजर कारण नहीं है	0.63	0.64
ईंधन खाद्य का ग्रेंजर कारण नहीं है	1.65	0.16
मूल ईंधन का ग्रेंजर कारण नहीं है	2.37	0.05
ईंधन मूल का ग्रेंजर कारण नहीं है	3.89	0.00
मूल खाद्य का ग्रेंजर कारण नहीं है	0.24	0.91
खाद्य मूल का ग्रेंजर कारण नहीं है	0.41	0.79

टिप्पणी: गैर खाद्य विनिर्मित उत्पादों द्वारा मूल मुद्रास्फीति का प्रतिनिधित्व किया जाता है।

अत्यधिक अस्थिर उत्पादन से उत्पन्न होते हैं, बाह्य कारणों में अंतर्राष्ट्रीय पण्य कीमतों में उछाल शामिल है, विशेष रूप से, ईंधन और उर्वरकों के मामले में । हाल के वर्षों में वैश्विक ईंधन कीमतों में वृद्धि काफी महत्वपूर्ण रही है और वह मुद्रास्फीतिकारक दबावों का प्रमुख स्रोत बन गई है। अधिकांश देशों (प्रमुख ओ ई सी डी देशों के अपवाद के साथ) ने पेट्रोलियम कीमत निर्धारण पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सरकारी हस्ताक्षेप नियोजित किये हैं (किरीट पारीख विशेषज्ञ दल, 2010) । किन्तु, हस्तक्षेप की प्रकृति और विधि अलग-अलग देशों में अलग-अलग होती है। भारत में, नियंत्रित मूल्य प्रक्रिया (ए पी एम), 1973-74 में प्रथम तेल कीमत आघात द्वारा उत्पन्न उच्च और अस्थिर तेल कीमतों से भारतीय अर्थव्यवस्था की रक्षा करने की दृष्टि से संपूर्ण तेल क्षेत्र पर लागू की गई थी।

3.47 अप्रैल 2002 में ए पी एम का पूरी तरह से परित्याग कर दिया गया था। अप्रैल 2002 और जनवरी 2004 के बीच तेल विपणन कंपनियों ने बाजार कारणों पर आधारित पेट्रोलियम उत्पादों की देशी उपभोक्ता कीमतों में परिवर्तन किये। उसके बाद कच्चे तेल की अंतर्राष्ट्रीय कीमतों में वृद्धि ने सरकार को पेट्रोल, डीज़ल, मिट्टी के तेल और घरेलू एल पी जी की कीमतों पर नियंत्रण पुनः लागू करने के लिए बाध्य किया जिससे ओ एम सी की अल्प वसूललियों में काफी अधिक वृद्धि हुई। 2008 में कच्चे तेल की कीमतों में ऐतिहासिक उछाल के साथ अल्प वसूलियां चिंताजनक अनुपात तक बढ़ गई थी (चार्ट III.4) । 2010 के आखीर से कच्चे तेल की अंतर्राष्ट्रीय

चार्ट III.4: ईंधन में उत्पाद-वार अल्प वसूली

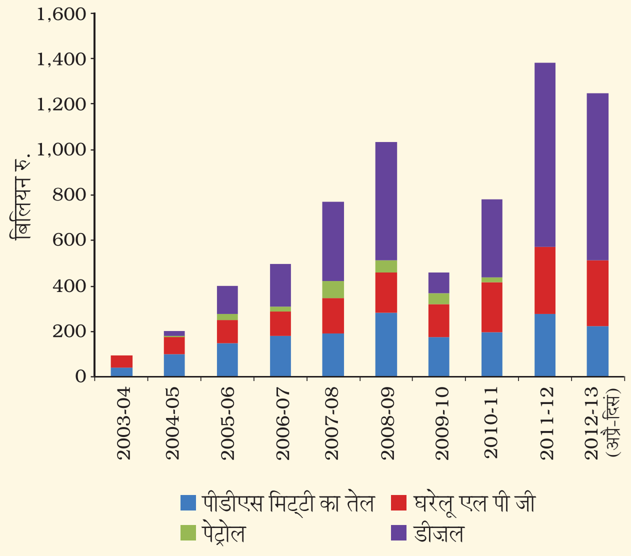

कीमतों में उच्च प्रवृत्ति के साथ, इस अवधि के दौरान ओ एम सी की अल्प वसूलियों में तीव्र वृद्धि देखी गई।

3.48 मुद्रास्फीति पर ईंधन कीमतों में सरकार के राजकोषीय हस्तक्षेप का प्रभाव नियंत्रित और अनियंत्रित उत्पादों के मध्य 'ईंधन' समूह में मुद्रास्फीति के विचलित नमूने से देखा जा सकता है। चूंकि सरकार का अप्रैल 2004 से ईंधन कीमत पर नियंत्रण पुनः उभरना शुरू हो गया था, इस अवधि के दौरान ईंधन कीमतों में प्रवृत्तियों के तुलनात्मक विश्लेषण से मुद्रास्फीति की उस सीमा का पता चलता है जिस तक राजकोषीय हस्तक्षेप के माध्यम से सरकार ने मुद्रास्फीति का अवशोषण किया है (चार्ट III.5)।

3.49 नियंत्रित कीमतें सार्थक रूप से अनियंत्रित कीमतों से कम रही हैं, जो इस बात का संकेत है कि नियंत्रित कीमत नीति घरेलू कीमतों को सार्थक रूप से कम रखने में सहायक रही है। नियंत्रित कीमतों के अंतर्गत उत्पादों में घरेलू एल पी जी, मिट्टी का तेल और डीज़ल शामिल है, जिनका एक साथ भार खनिज तेल समूह के अंतर्गत कीमत नियंत्रण से मुक्त उत्पादों के संयुक्त रूप से थोक मूल्य सूचकांक के 3.0 प्रतिशत की तुलना में 6.3 प्रतिशत था। यदि कोई यह मानता है कि अनियंत्रित कीमतों की मुद्रास्फीति राजकोषीय हस्तक्षेप के अभाव में वैसी ही होने की संभावना है, जिसके बारे में कोई कीमत नियंत्रण मुक्त उत्पादों की मुद्रास्फीति तथा नियंत्रित कीमतों की मुद्रास्फीति के बीच अंतर के रूप में दमित मुद्रास्फीति की सीमा का अनुमान लगा सकता है (चार्ट III.6)। यह देखा जा सकता है कि नियंत्रित कीमतें अस्थिरता को सार्थक रूप से बराबर करने के लिए एक राजकोषीय नीति साधन के रूप में इस्तेमाल की गई हैं जिसके अभाव में वह उभर कर सामने आ जाती यदि वैश्विक ईंधन कीमत आघातों को देशी कीमतों तक पूर्ण रूप से गुजरने की अनुमति दी गई होती। यह अस्थिरता, निविष्टि लागत पर अपने प्रभाव के अतिरिक्त, सार्थक रूप से अस्थिरक मुद्रास्फीति की संभावनाओं पर भी प्रभाव डाल सकती है, जिसके द्वारा ऐसी स्थिति का निर्माण हो सकता है जिसमें मौद्रिक नीति को और अधिक सक्रिय होना होगा। इसलिए जब आपूर्ति में अचानक कमी मुद्रास्फीति पथ को सार्थक रूप से अस्थिरता प्रदान करती है तो राजकोषीय-मौद्रिक समन्वय निर्णायक बन जाता है।

3.50 पण्य कीमत आघातों से देशी अर्थव्यवस्था को पृथक करने के प्रशासनिक उपाय अल्पावधि में कम मुद्रास्फीति प्रदान कर सकते हैं किन्तु बढ़े हुए राजकोषीय भार के कारण मध्यावधि में मुद्रास्फीति में वृद्धि हो सकती है। देशी मुद्रास्फीति पर पण्य कीमतों में तीव्र अस्थिरता के प्रभाव को पृथक करने के प्रयोजन के लिए केवल राजकोषीय/प्रशासनिक उपायों के उपयुक्त नीति मिश्रण का इस्तेमाल करना होगा, जब कि स्तर में किसी परिवर्तन को आदर्श रूप से गुजरने दिया जाए क्योंकि उससे भी मांग समायोजन में सहायता मिलेगी। थोक उपभोक्ताओं के लिए डीज़ल की खुला बाजार कीमत लागू करने तथा डीज़ल की खुदरा कीमत में भिन्न कालिक वृद्धियों के संबंध में सरकार द्वारा की गई हाल की घोषणाओं से सन्निकट कीमत दबावों में वृद्धि हो सकती है, किन्तु यह सही दिशा में एक कदम है।

चार्ट III.5: ईंधन की अंतर्राष्ट्रीय और देशी कीमतों में उतार-चढ़ाव

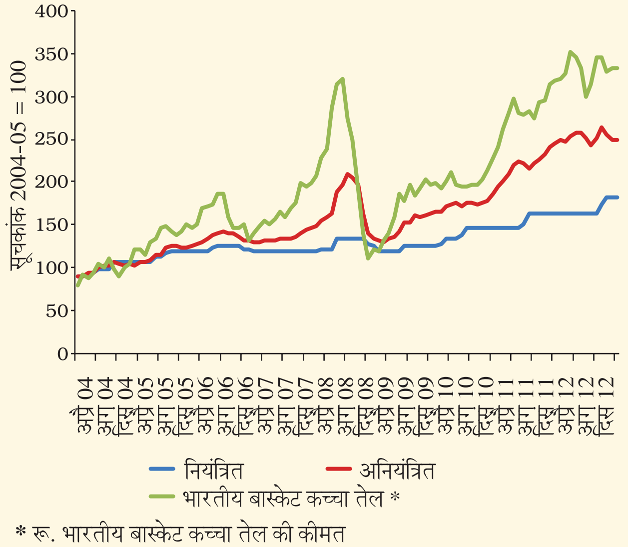

* रू. भारतीय बास्केट कच्चा तेल की कीमत

चार्ट III.6: ईंधन स्फीति पर राजकोषीय नियंत्रण

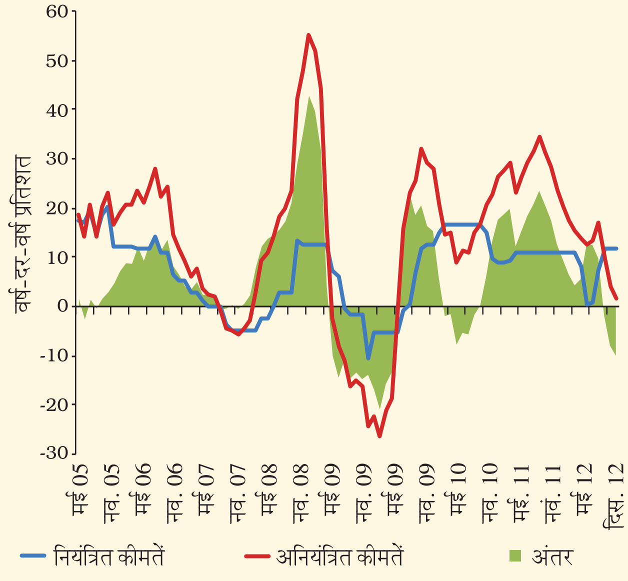

3.51 सरकार उर्वरक सब्सिडियां उपलब्ध करा रही है, क्योंकि कृषि क्षेत्र के लिए वह एक मुख्य निविष्टि है। यह देखा जा सकता है कि अंतर्राष्ट्रीय उर्वरक कीमतों में हाल के वर्षों में तीव्र वृद्धि दिखाई दी है और ऐसा ही ईंधन उत्पादों के मामले में भी हुआ है, सरकार ने इस प्रकार की अस्थिरता पर रोक लगाने के लिए सब्सिडियों को एक प्रमुख साधन के रूप में इस्तेमाल किया है (चार्ट III.7) । यद्यपि अल्पावधि में मुद्रास्फीति प्रबंध के लिए सब्सिडियों को एक साधन के रूप में, इस्तेमाल किया जा सकता है, किन्तु अंतर्राष्ट्रीय बाजार में चिरस्थायी उच्च कीमतों की वजह से राजकोषीय मोर्चे पर काफी अधिक भार पड़ सकता है और देशी कीमतों को उच्च आयात कीमतों का प्रभाव अपरिहार्य रूप से झेलना पड़ सकता है, विशेष रूप से तब, जब आयात पर निर्भरता बहुत अधिक हो।

सरकारी वित्त पर मुद्रास्फीति का प्रभाव

3.52 मौद्रिक और राजकोषीय नीति के बीच जिस प्रमुख चैनल के माध्यम से पारस्परिक क्रिया कार्य करती है वह मुद्रास्फीति और सरकारी वित्त के बीच आकस्मिक संबंध के माध्यम से है। यदि सरकारी राजस्व और व्यय की मुद्रास्फीति के प्रति अलग-अलग अनुक्रिया होती है तो इन घटकों की मुद्रास्फीति के प्रति निवल अनुक्रिया पर निर्भर करते हुए राजकोषीय संतुलन बदल जायगा। यदि मुद्रास्फीति के प्रति सरकार के व्यय की मूल्य सापेक्षता, मुद्रास्फीति के प्रति राजस्व की मूल्य सापेक्षता से अधिक है तो, मुद्रास्फीति में वृद्धि से घाटे में वृद्धि होगी और इसके विपरीत स्थिति होगी। इस क्षेत्र में आघेवली और खान (1978) द्वारा सेमिनल कार्य

चार्ट III.7: उर्वरक कीमतें और सब्सिडी

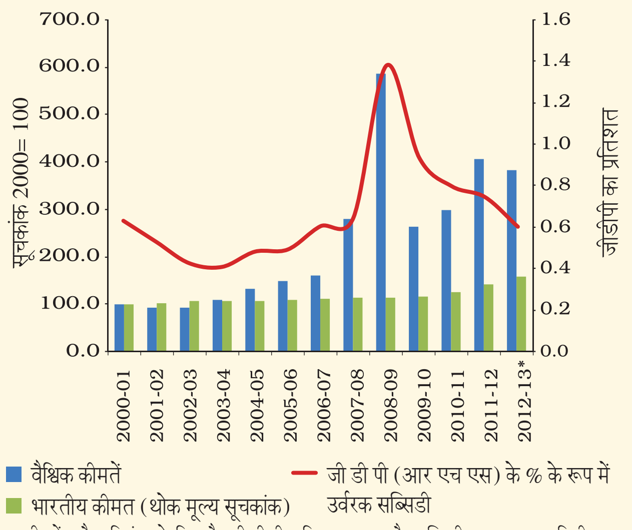

* कीमतें अप्रैल-दिसंबर के लिए है। जी डी पी अग्रिम अनुमान और सब्सिडी बजट अनुमान वित्तीय वर्ष के लिए है।

किया गया था। उन्होंने पाया कि उभरती अर्थव्यवस्थाओं में मुद्रास्फीति को स्वतः स्थायी बनाने वाली एक प्रक्रिया होती है। भारत के संबंध में पिछले अनुभवजन्य अध्ययनों (शर्मा 1984, जाधव और सिंह, 1990) ने भारतीय संदर्भ में मुद्रास्फीति प्रेरित घाटे की प्राक्कल्पना की वैधता के लिए समर्थन पाया।

3.53 मुद्रास्फीति और सरकारी वित्त के बीच पारस्परिक क्रिया की बॉक्स ।।।.4 में प्रायोगिक रूप से जांच की गई है। यह देखा जा सकता है कि मुद्रास्फीति के प्रति व्यय मूल्य-सापेक्षता काफी अधिक है और सांख्यिकीय आधार पर राजस्व मूल्य सापेक्षता की तुलना में महत्वपूर्ण है। यह इसलिए हो सका है कि अधिकांश सरकारी व्यय की योजना वास्तविक रूप से बनाई जाती है और मुद्रास्फीति के प्रति उसे स्वतः ही सूचकांक प्राप्त हो जाता है। उदाहरण के लिए, मुद्रास्फीति के साथ परियोजना लागत बढ़ जाती है, जब कि वेतन मुद्रास्फीति सूचकांक से सम्बद्ध होते हैं। इसके अलावा, मुख्य मदों, जैसे खाद्य और ईंधन पर सब्सिडी व्यय भी मुद्रास्फीति के प्रति बहुत अधिक संवेदनशील हैं। राजकोषीय घाटे का उच्चतर स्तर मुद्रास्फीतिकारक हो सकता है, ये बिन्दु भी स्वतः स्थायी बनने वाले मुद्रास्फीति चक्र तथा राजकोषीय घाटे के जोखिम में परिणत हो जाते हैं।

V. सरकारी व्यय की चक्रीयता

3.54 कीन्स के दृष्टिकोण बताते हैं कि राजकोषीय नीति आदर्श रूप से प्रतिचक्रीय होनी चाहिए, अर्थात् आर्थिक गिरावट के दौरान जब अर्थव्यवस्था का विस्तार हो रहा हो तथा उसमें वृद्धि हो रही हो, राजकोषीय घाटों में कमी होनी चाहिए। सरकार के व्यय की चक्रीयता को सामान्यतया इस रूप में परिभाषित किया जाता है कि व्यय किस प्रकार से उत्पादन अंतराल के साथ चलता है। जब नकारात्मक उत्पादन अंतराल की स्थिति में यदि सरकार के व्यय बढ़ते हैं। (अर्थात् उत्पादन उसकी संभाव्यता से कम हो) तो व्यय प्रतिचक्रीय होते हैं। इसका निहितार्थ यह है कि जब उत्पादन उसकी प्रवृत्ति के सापेक्ष अधिक होता है तो व्यय कम होता है। इसलिए, प्रचक्रीयता को उत्पादन अनुपात के प्रति औसत से अधिक व्यय के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जब कभी भी उत्पादन उसकी संभाव्यता से अधिक हो।

3.55 अनेक देशों में राजकोषीय नीतियां प्रतिचक्रीय के स्थान पर प्रचक्रीय बन गई हैं। इस घटना में उधार दबाव, राजकोषीय नियम और कमज़ोर संस्थाएं योगदान करती हैं। नीतियां, विशेष रूप से सरकारी व्यय तेजी के समय प्रायः विस्तारकारी हो जाते हैं और मंदी के दौरान संकुचनकारी बन जाते हैं। यह, समष्टि आर्थिक स्थिरता के दृष्टिकोण से संभाव्य रूप से नुकसानदायक है। इसके प्रतिकूल कल्याण नतीजे भी होते हैं। इसके अलावा, अच्छे समय में राजकोषीय

बॉक्स III.4
मुद्रास्फीति और सरकारी वित्त: क्या यह भारत में स्वत: स्थायी चक्र है ?

भारतीय मामले में मुद्रास्फीति-घाटा संबंध का अनुभवजन्य अनुमान एक वेक्टर त्रुटि सुधार मॉडल (वी ई सी एम) ढांचे के अंतर्गत सह-समन्वय संबंध का अनुमान लगाते हुए प्रारंभ किया जाता है।

सह समन्वय संबंध बनाये रखने के लिए समान क्रम के सभी परिवर्ती एकीकृत किये जाने चाहिए। स्थायीत्व के लिए परिवर्तियों की जांच की गई थी और यह पाया गया कि सम-स्तरों पर सभी परिवर्ती अस्थायी थे किन्तु प्रथम अंतर पर स्थायी थे, जिससे यह संकेत मिलता है कि इन परिवर्तियों के बीच सह-समन्वय संबंध हो सकता है।

जोहन्सन और जुसेलियस (1992) द्वारा सुझाये गये प्रणाली विज्ञान के अनुसरण में ट्रेस टेस्ट और अधिकतम ईजन मूल्य सांख्यिकी का इस्तेमाल करते हुए सरकारी राजस्व, मुद्रास्फीति, और संवृद्धि के बीच संबंध में सह-समन्वित वेक्टर्स की उपस्थिति तथा संख्या का अनुमान लगाया गया है। दोनों जांच से सरकारी राजस्व समीकरण और सरकारी व्यय समीकरण के लिए एक सह-समन्वित वेक्टर की उपस्थिति का पता चलता है। यह आर्थिक सिद्धांत में प्रस्तुत किये गये तर्क के अनुरूप है। जहाँ सरकारी राजस्व (आर ई वी) मुद्रास्फीति और आर्थिक संवृद्धि द्वारा सकारात्मक रूप से प्रभावित हो सकते हैं, सरकार के व्यय (ई एक्स पी) उच्च मुद्रास्फीति का कारण तथा प्रभाव, दोनों ही हो सकते हैं। अनुमानित संबंध (सरकारी राजस्व, व्यय, मुद्रास्फीति और वी ई सी एम मॉडल में संवृद्धि के बीच संबंध विनिर्दिष्ट करते हुए) से 1990-2012 की अवधि के लिए निम्नलिखित परिणाम प्राप्त हुए हैंः

सरकारी राजस्व

लॉग आरईवी = -5.90+0.88 लॉग डब्ल्यूपीआइ + 0.75 लॉग जीडीपी

टी मूल्य (1.35) (2.51) *

सरकारी व्यय

लॉग ईएक्सपी = -10.21 + 2.72 लॉग डब्ल्यूपीआई-0.03 लॉग जीडीपी

टी मूल्य (2.56)** (-0.06)

* 5 प्रतिशत पर महत्वपूर्ण

** 1 प्रतिशत पर महत्वपूर्ण

संवृद्धि, मुद्रास्फीति और सरकारी वित्त के बीच पारस्परिक क्रिया के अनुसार, अनुभवज्य परिणाम निम्नलिखित प्रमुख निहितार्थ दर्शाते हैं। यह देखा गया है कि सरकारी राजस्व पर की तुलना में सरकारी व्यय पर मुद्रास्फीति का दीर्घावधि प्रभाव अधिक बृहत् और महत्वपूर्ण होता है। संवृद्धि के प्रति सरकारी राजस्व की अनुक्रिया सकारात्मक होती है। इसका निहितार्थ यह है कि उच्च मुद्रास्फीति उच्चतर सरकारी व्यय की तरफ ले जा सकती है जो क्रमशः राजकोषीय घाटे को बढ़ाएगा। यह निश्चित है कि दीर्घावधि में राजकोषीय घाटा मुद्रास्फीतिकारक है, मुद्रास्फीति- सरकारी वित्त संबंध स्वतः - स्थायी चक्र की स्थिति उत्पन्न कर सकते हैं, जैसा कि आघेवली और खान (1978) ने तर्क दिया था। इस प्रकार मुद्रास्फीति प्रबंध की दृष्टि से मौद्रिक और राजकोषीय नीतियों के बीच समन्वय और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गया है क्योंकि दीर्घावधि में उच्च मुद्रास्फीति की स्थिति स्वतः स्थायी हो सकती है। ये परिणाम यह भी संकेत करते हैं कि उच्चतर संवृद्धि से सरकारी वित्त की स्थिति में सुधार होना आवश्यक नहीं है, यदि मुद्रास्फीति अनियंत्रित है।

संदर्भ

आघेवली और खान (1978), ''विकासशील देशों में सरकारी घाटे और मुद्रास्फीति कारक प्रक्रिया,'' आइ एम एफ स्टाफ पेपर्स, वॉल्यूम. 25, 383-416

नीतियां पूर्ण रूप से बुरे समय में प्रति संतुलित नहीं होती हैं तथा वे असंशोधित घाटे की ओर झुकाव लिये छोड़ दी जाती हैं। इससे कर्ज की निरंतरता का जोखिम रह सकता है और चूक की संभावनाएं बढ़ सकती हैं। आदर्श रूप से, कर नीतियों का इस्तेमाल कर विकृतियों और व्यय को कारोबार चक्र पर आसान बनाने के लिए किया जाना चाहिए, किन्तु स-चक्रीय राजकोषीय नीतियों की प्रकृति का झुकाव कारोबार चक्र घट-बढ़ को बदतर बनाने की ओर होता है। भारत में जी डी पी की संवृद्धि दर तथा सरकारी अंतिम उपभोग व्यय (जी एफ सी ई) के बीच की तुलना स-चक्रीयता की प्रकृति की ओर संकेत करती है (चार्ट III.8)।

3.56 स-चक्रीयता की जाँच के लिए नीचे दिये गये दो अभ्यास पूरे किये गयेः (i) एक त्रुटि-सुधार ढांचे में राजकोषीय खर्च और उत्पादन संबंध की जाँच की गई थी जिससे हम सरकारी खर्च पर उत्पादन के अल्पावधि प्रभाव तथा इन दो परिवर्तियों के बीच किसी दीर्घावधि प्रभाव के बीच का अंतर समझ सके। (ii) सरकारी खर्च और उत्पादन के बीच संबंध को समझने के लिए सरकारी उपभोग खर्च के चक्रीय घटक का ओ एल एस परावर्तन समीकरण/जी डी पी (जी एफ सी ई/ जी डी पी - सी अनुपात (वास्तविक) और जी डी पी का चक्रीय घटक (वास्तविक जी डी पी-सी) का, सरकारी खर्च और उत्पादन के बीच संबंध समझने के लिए अनुमान लगाया गया था[1]। 1950-51 से 2011-12 के लिए परिणाम निम्नानुसार थे:

दीर्घावधि समीकरण

लॉग वास्तविक जी एफ सी ई = 7.88 + 0.23 लॉग (वास्तविक जीडीपी) + 0.04 प्रवृत्ति (1971)

टी (5.5)*** (2.1)** (7.4)*** एडीजे आर^2 = 0.99

1 वास्तविक जी डी पी (फैक्टर लागत पर) के बजाय ''सरकारी खर्च को छोड़कर वास्तविक जी डी पी (बाजार कीमत पर)'' को परिवर्ती मानते हुए समान परिणाम प्राप्त किये गये थे।

चार्ट III.8: सरकारी व्यय और सकल देशी उत्पाद की संवृद्धि दरें

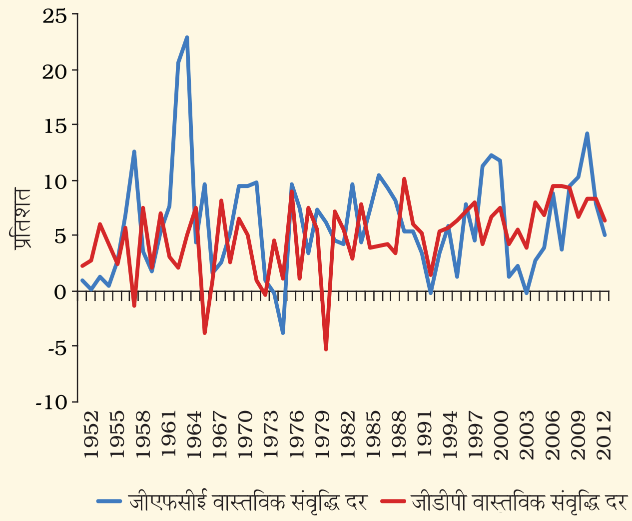

अल्पावधि समीकरण:

डी(लॉग(वास्तविक जी एफ सी ई)) =0.02+ 0.51 डी (लॉग (वास्तविक जी एफ सी ई (-1)))
टी (1.3) (3.8)***

+ 0.20 डी (लॉग (वास्तविक जी डी पी) -0.31(दीर्घावधि समीकरण का शेष (-1))
(1.2) (-3.4)*** एडीजे आर^2 = 0.33

* 10 प्रतिशत पर महत्वपूर्ण ** 5 प्रतिशत पर महत्वपूर्ण, और
*** 1 प्रतिशत पर महत्वपूर्ण

3.57 परिणाम दर्शाते हैं कि जी एफ सी ई और जी डी पी सह-समन्वित हैं और यह कि सरकारी व्यय दीर्घावधि और अल्पावधि दोनों में प्रचक्रीय है। किन्तु एक अल्पावधि (1980-81 से 2011-12) के लिए उक्त परिणाम सांख्यिकीय तौर पर निरर्थक हैं। ऐसा, वैश्विक वित्तीय संकट की पृष्ठभूमि में 2008-09 में शुरू किये गये प्रति-चक्रीय राजकोषीय विस्तार द्वारा हो सकता है।

चक्रीय घटकों पर ओ एल एस

जीएफसीई/जीडीपी_सी = सी + β1* वास्तविक जीडीपी_सी(-1)+ β2 * वास्तविक जीडीपी_सी(-2) + β3 * वास्तविक जीडीपी_सी(-4)

अनुमानित समीकरण प्रतिफल

जीएफसीई/जीडीपी_सी = 0.001+0.08 वास्तविक जीडीपी_सी(-1)+0.12 वास्तविक जीडीपी सी(-2)
टी (-0.2) (2.5)** (4.1)***

+0.08 वास्तविक जीडीपी_सी(-4) एडीजेआर^2 = 0.32
(2-8)***

* 10 प्रतिशत पर महत्वपूर्ण ** 5 प्रतिशत पर महत्वपूर्ण और
*** 1 प्रतिशत पर महत्वपूर्ण

चार्ट III.9: सकल देशी उत्पाद और सरकारी अंतिम उपभोग व्यय के चक्रीय घटक (एच पी- फिल्टर का प्रयोग करते हुए)

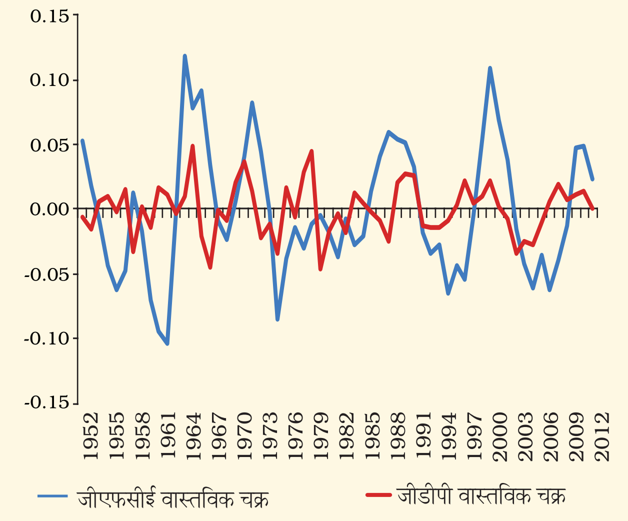

3.58 चूंकि वास्तविक जी डी पी-सी के गुणांक सकारात्मक पाये गये हैं, सरकारी व्यय फिर प्रचक्रीय पाया गया है। उपर्युक्त परिणाम सरकारी व्यय की प्रचक्रीयता पर प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। जी डी पी और जी एफ सी ई के चक्रीय घटक में उतार चढ़ाव के द्वारा आगे और इसकी पुष्टि होती है। (चार्ट III.9 और III.10)।

3.59 विकासशील अर्थव्यवस्था में राजकोषीय व्यय की प्रचक्रीयता कोई असामान्य बात नहीं है और इसके समर्थन में काफी

चार्ट III.10: सकल देशी उत्पाद अनुपात और सकल देशी उत्पाद में सरकारी अंतिम उपभोग व्यय के चक्रीय घटक

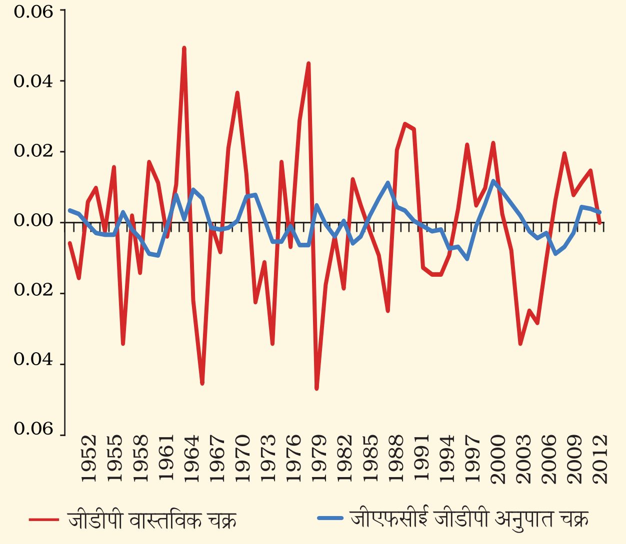

अनुभवजन्य प्रमाण हैं, तथापि इस प्रकार का व्यवहार सामान्य बुद्धिमानी के विरूद्ध होता है। सरकार को ''बुरे समय'' में उधार लेना चाहिए जब राजस्व कम हो जाते हैं तथा ''सामाजिक'' व्यय में वृद्धि हो जाती है, और अच्छे समय में कर्ज की चुकौती करनी चाहिए। किन्तु अनेक कारणों से ई एम डी ई में कारोबार चक्र पर राजकोषीय नीतियां कर प्राप्तियों तथा व्यय का महत्व कम नहीं करती हैं, उन कारणों में से कुछ इस प्रकार हैं : (i) राजकोषीय स्थितियां पहले से ही इतनी खींचकर बढ़ा दी जाती हैं कि प्रतिचक्रीय नीतियों के लिए सीमित गुंजाइश बचती है, (ii) प्रतिचक्रीय नीतियों के समर्थन के लिए राजकोषीय नियमों में अपर्याप्त प्रावधान, (iii) इन अर्थव्यवस्थाओं द्वारा सामना किये जाने वाले उधार दबाव (iv) कमज़ोर संस्थाएं जो अन्तर्निमित घाटे की ओर झुकाव रखती हैं, (v) भ्रष्टाचार जो उत्पादन अंतराल के प्रति प्राथमिक संतुलन की अनुक्रिया को कम करता है, (vi) लालच प्रभाव, जिसमें अप्रत्याशित राजस्व राजकोषीय पुनर्वितरण के लिए दबावों को तीव्र कर देता है और सामान्य पूल समस्या को प्रबलित कर देता है। भारत इस प्रकार की समस्याओं से बचा हुआ नहीं हैं।

VI. कर्ज-घाटा गति सिद्धांत और मौद्रिक प्रबंध

3.60 यद्यपि केंद्रीय बैंक राजकोषीय प्राधिकारी के एक एजेंसी कार्य के रूप में कर्ज प्रबंध का संचालन करता है, मौद्रिक प्रबंध को आकार देने में घाटे और कर्ज की प्रवृत्ति एक सार्थक भूमिका निभा सकते हैं। सिद्धांत रूप में, मौद्रिक और राजकोषीय नीतियां अल्पावधि और दीर्घावधि स्तरों तथा समष्टि आर्थिक परिवर्तियों के पथ जैसे उत्पादन और मुद्रास्फीति को अनुकूलित करने के लिए अनेक प्रकार से पारस्परिक क्रिया करती हैं। इस खंड में पिछले तीन दशकों के दौरान भारत में कर्ज-घाटा गति सिद्धांत तथा मौद्रिक नीति के बीच पारस्परिक क्रिया का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

3.61 दो वैकल्पिक स्रोतों, अर्थात् कर (धन करेतर और अन्य गैर-कर्ज प्राप्तियाँ) वित्तपोषण और कर्ज वित्तपोषण के माध्यम से अपने व्यय को वित्त प्रदान करने के सरकार के निर्णय से कर्ज-घाटा गति सिद्धांत उत्पन्न होता है। यद्यपि सरकार नियमित रूप से चुकौतियां कर रही है, विगत वर्षों में उच्चतर अनुपात में सरकारी व्यय के कर्ज वित्तपोषण से सार्वजनिक कर्ज के स्टॉक में वृद्धि हो सकती है। भारत में, 1980-81 से 2012-13 की अवधि के दौरान, कुल सरकारी व्यय के औसतन एक तिहाई भाग का वित्तपोषण उधार राशियों द्वारा किया गया था, अर्थात् सरकार द्वारा व्यय किये गये प्रत्येक 100 रूपये के लिए 33 रूपये उधार लिये गये थे।

3.62 कर्ज वित्तपोषण की अवस्थिति के बावजूद, 2000 के वर्षों के दौरान उसके अंश में गिरावट देखी गई, जो सरकार द्वारा राजकोषीय उत्तरदायित्व और बजट प्रबंध (एफ आर बी एम) अधिनियम, 2003 के अधिनियमन को प्रतिबिंबित करती है जिससे क्रमशः राजकोषीय अनुशासन की स्थिति बन गई। इस प्रकार, भारत में राजकोषीय नीति के इतिहास में एफ आर बी एम अधिनियम तथा अनुवर्ती एफ आर बी एम नियम मील के पत्थर थे जिनके अंतर्गत सरकार से कानूनन यह अपेक्षा की गई थी कि वह 2007-08 तक सकल राजकोषीय घाटा जी डी पी का 3 प्रतिशत से अनधिक प्राप्त करे, जिसे बाद में एक वर्ष बढ़ा कर 2008-09 कर दिया गया था। वस्तुतः, जब केन्द्र सरकार ने 2007-08 में जी डी पी के प्रति राजकोषीय घाटे का अनुपात 2.5 प्रतिशत प्राप्त कर लिया था, वह लक्ष्य से आगे थी। किन्तु, अर्थव्यवस्था में कुल मांग पर वैश्विक गिरावट के प्रभाव को प्रतिसंतुलित करने के लिए चूंकि सरकार ने राजकोषीय प्रोत्साहन कार्यक्रम कार्यान्वित किये थे, वैश्विक वित्तीय हलचल के प्रारंभ के साथ कर्ज वित्तपोषण में गिरावट की प्रवृत्ति में उलटाव हो गया था।

3.63 इस प्रकार, हाल के वर्षों में, अर्थात् 2008-09 से 2012-13 तक व्यय में कर्ज वित्तपोषण का अंश बढ़ गया है। वित्तीय वर्ष 2010-11 में कर्ज वित्तपोषण के अंश में सामान्य गिरावट ने विस्तारकारी राजकोषीय नीति से आंशिक निकासी के प्रभाव को प्रतिबिंबित किया, जिसे करेतर प्राप्तियों और आर्थिक संवृद्धि में सुधार सहित राजस्व प्राप्तियों में सुदृढ़ संवृद्धि का समर्थन प्राप्त था। किन्तु, 2011-12 और 2012-13 में चिरस्थायी निम्न आर्थिक संवृद्धि से सरकारी राजस्व संसाधनों में कमी हो गई और इस प्रकार कर्ज के माध्यम से व्यय वित्तपोषण 2010-11 की तुलना में थोड़ा सा अधिक था (चार्ट III.11)।

3.64 व्यय का कर्ज वित्तपोषण सरकार पर चुकौती का उत्तरदायित्व आवश्यक बना देता है, रिकार्डियन तुल्यता के अनुसार जिसका वित्तपोषण भावी कर और करेतर राजस्वों द्वारा करना होगा। किन्तु, यदि सरकार भविष्य में अपने पिछले कर्ज के वित्तपोषण के लिए पर्याप्त राजस्व नहीं जुटा पाती है तो उसे पुराने कर्ज के वित्तपोषण के लिए नये उधारों का सहारा लेना पड़ सकता हैं। इसे राजकोषीय शब्दावली में आम तौर पर पोन्ज़ी वित्तपोषण के नाम से जाना जाता है। सैद्धांतिक रूप से, इससे बचने के लिए, सरकार को एक प्राथमिक राजस्व अधिशेष का निर्माण करना होता है, जो ब्याज भुगतान दायित्वों के वित्तपोषण के लिए पर्याप्त हो। भारत में, केंद्र

चार्ट III.11: सरकारी व्यय का उधार राशियों द्वारा वित्तपोषण किये जाने में निरंतर वृद्धि

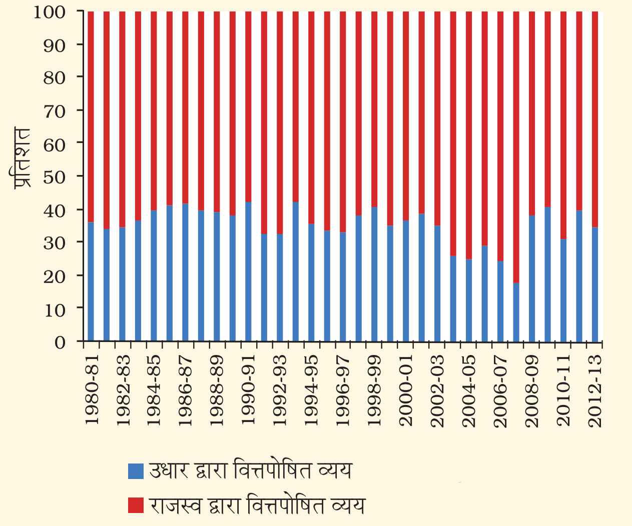

चार्ट III.12: बढ़ते हुए ब्याज का प्राथमिक राजस्व शेष में उलटाव से भुगतान

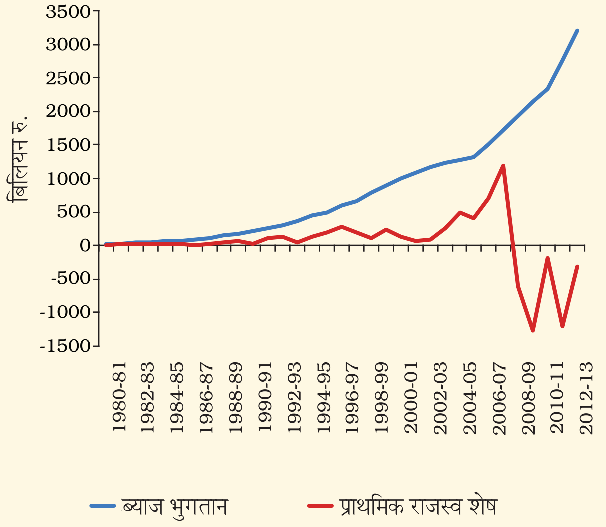

सरकार हाल के वर्षों के दौरान को छोड़कर पिछले तीन दशकों से प्राथमिक राजस्व अधिशेष चला रही है। किन्तु, पिछले दो दशकों के दौरान, यह प्राथमिक राजस्व अधिशेष सम्पूर्ण ब्याज भुगतानों के वित्तपोषण के लिए अपर्याप्त था। एफ आर बी एम अधिनियम के कार्यान्वयन के साथ, जब सरकार ने एक नियम-आधारित राजकोषीय नीति ढांचे की ओर कदम रखा, राजकोषीय कार्यक्षेत्र में प्राथमिक राजस्व अधिशेष द्वारा वित्तपोषित ब्याज भुगतान के प्रतिशत में सुधार हुआ है। हालांकि, राजकोषीय प्रोत्साहन कार्यक्रम ने अपनी विस्तारकारी, प्रणाली से प्राथमिक राजस्व अधिशेष को हटा दिया, और उसके परिणामस्वरूप सरकार ने हाल के वर्षों के दौरान एक प्राथमिक राजस्व घाटे की रिपोर्ट की, जो यह दर्शाता है कि नये उधारों का इस्तेमाल ब्याज भुगतानों के एक भाग के वित्तपोषण के लिए किया गया था। (चार्ट III.12)

3.65 सरकार द्वारा एफ आर बी एम अधिनियम के कार्यान्वयन ने पिछले दशक के दौरान भारतीय अर्थ-व्यवस्था में राजकोषीय घाटे और कर्ज के स्तर और पथ के निर्धारण में एक प्रमुख भूमिका अदा की। साहित्य में यह भी तर्क दिया जाता है कि राजकोषीय अनुशासन मौद्रिक स्वतंत्रता का एक दर्पण प्रतिबिंब है। यह इसलिए कि जब कर्ज की राशि सरकार की राजकोषीय नीति का परिणाम है, कर्ज की संरचना कर्ज प्रबंध नीति का परिणाम है (टॉबिन, 1963)। अनेक देशों में (भारत सहित), कर्ज प्रबंध नीति केंद्रीय बैंकों के अधीन होती है।[2] जब कि केन्द्रीय बैंकों का घाटे की राशि पर सामान्यतया कोई नियंत्रण नहीं होता है, बड़े राजकोषीय घाटे प्रायः यह आवश्यक बना देते हैं कि मौद्रिक और कर्ज प्रबंध, दोनों के निर्विघ्न संचालन के लिए राजकोषीय-मौद्रिक समन्वय स्थापित किया जाए। सभी देशों के अनुभव से यह संदेश मिलता है कि इसे या तो एक संस्थागत व्यवस्था के माध्यम से पूरा किया जाए जहाँ सरकार की ओर से कर्ज प्रबंध का संचालन करते हुए केंद्रीय बैंक के साथ समन्वय किया जाए, अथवा कर्ज प्रबंध के लिए एक अलग एजेंसी की स्थापना करके इसे प्राप्त किया जा सकता है। एजेंसी को तथापि समन्वय तंत्र की आवश्यकता होगी जो सरकार की बहुत बड़ी बाजार उधार की राशि के मामले में एक कठिन कार्य हो सकता है। चूंकि एजेंसी में ब्याज दरों, चलनिधि प्रबंध और ऋण प्रवाहों का निहितार्थ है, एक ही स्थान पर एक समन्वित दृष्टिकोण के अपने अलग लाभ हैं। घाटे के परिणाम के रूप में उधार की राशि, जो सरकार द्वारा निर्धारित की जाती है, केंद्रीय बैंक को, उसके वित्तपोषण की व्यवस्था करने के लिए बहिर्जात रूप से प्रदान कर दी जाती हे। वस्तुतः, राजकोषीय-मौद्रिक अंतरापृष्ठ के क्षेत्र में मानक सैद्धांतिक तर्क कर्ज प्रबंध नीति और मौद्रिक नीति के बीच पारस्परिक क्रिया पर आधारित होते हैं। इस प्रकार, जिन विधियों से कर्ज/घाटों का वित्तपोषण किया जाता है वे उतनी ही महत्वपूर्ण

2 उदाहरण के लिए, श्रीलंका, केन्या, पाकिस्तान, जांबिया, कोस्टा रिका और निकारागुआ जैसे देशों में कर्ज प्रबंध केंद्रीय बैंकों के पास निहित है।

होती हैं जितना कि घाटे/कर्ज का आकार महत्वपूर्ण होता है। इसके अलावा, यह मानते हुए कि घाटे/कर्ज का वित्तपोषण उस स्थिति में आसानी से किया जा सकता है जब वे आकार में छोटे हों, यह अर्थ देता है कि घाटे/कर्ज को कम करने की प्रतिबद्धता के साथ राजकोषीय अनुशासन मौद्रिक नीति के संचालन के समय केंद्रीय बैंकों के पास उपलब्ध युक्ति में सुधार करेगा।

जी एफ डी का बाह्य वित्तपोषण और उसका मौद्रिक प्रभाव

3.66 भारतीय रिज़र्व बैंक (आर बी आई) अधिनियम 1934 की धारा 20 और 21 के अनुसार मौद्रिक प्राधिकारी होने के अतिरिक्त भारतीय रिज़र्व बैंक के अधीन भारत सरकार के सार्वजनिक कर्ज का प्रबंध तथा नये ऋण जारी करना भी है। इसके अलावा, आर बी आई अधिनियम की धारा 21 क के अंतर्गत रिज़र्व बैंक राज्य सरकारों के साथ करार करके राज्यों के कर्ज का प्रबंध अपने हाथ में ले सकता है। इस प्रकार, भारत में, कर्ज प्रबंध नीति तथा मौद्रिक नीति, दोनों ही एक ही संस्था के साथ संबद्ध हैं।

3.67 जहाँ तक घाटे के वित्तपोषण का संबंध है, भारत में वह प्राथमिक रूप से आंतरिक स्रोतों के माध्यम से वित्तपोषित किया जाता है। पिछले तीन दशकों के दौरान, भारत में कुल जी एफ डी का औसतन 6-1 प्रतिशत बाह्य स्रोतों के माध्यम से जुटाये गये संसाधनों का इस्तेमाल करते हुए वित्तपोषित किया गया था। किन्तु, विगत वर्षों में, जी एफ डी के बाह्य वित्तपोषण की सीमा में गिरावट आ गई। इसके अलावा, यद्यपि विदेशी संस्थागत निवेशकों (एफ आई आई एस) को सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश करने की अनुमति दी गई है, एफ आई आई एस के पास कुल सरकारी कर्ज का केवल थोड़ा सा हिस्सा है। बहुपक्षीय और द्विपक्षीय ऋणदाताओं से लिये गये ऋण बाह्य वित्तपोषण के अन्य स्रोत हैं। इसके अतिरिक्त, सरकार ने एक राष्ट्रिक संस्था के रूप में अंतर्राष्ट्रीय पूंजी बाजार में सीधे अपनी पहुँच नहीं बनाई है। इस प्रकार, ऐसे उधार के साथ आम तौर से जुड़े हुए जोखिम व्यावहारिक तौर पर मौजूद नहीं हैं (जी ओ एल, 2011)। राष्ट्रिक कर्ज पर ऐसे जोखिमों ने यूरो क्षेत्र में संकट को तीव्र कर दिया है। इसके अतिरिक्त, भारत में, उप-राष्ट्रीय सरकारों को अपने स्वयं के बूते पर बाह्य ऋण जुटाने की अनुमति नहीं है।

3.68 सिद्धांत रूप में, बाह्य स्रोतों के माध्यम से जी एफ डी का वित्तपोषण निवल पूंजी अंतर्वाहों के माध्यम से राजकोषीय-मौद्रिक अंतरापृष्ठ में अन्य आयाम जोड़ देता है। मुंडेल-फ्लेमिंग ओपन इकॉनामी मॉडल के अनुसार, मुद्रा के अधिमूल्यन के परिणामस्वरूप प्रायः भारी मात्रा में निवल पूंजी अंतर्वाहों के संदर्भ में विनिमय दर को सहन करने योग्य स्तरों पर (अथवा एक नियत दर पर) रखने के लिए विदेशी मुद्रा बाजार में जब हस्तक्षेप होता है तो एक स्वतंत्र मौद्रिक नीति का होना असंभव है। इस प्रकार, उच्चतर अनुपातों में बाह्य संसाधनों के माध्यम से जी एफ डी का वित्तपोषण केवल राजकोषीय निरंतरता पर ही अप्रत्यक्ष प्रभाव नहीं डाल सकता है बल्कि असंभव ट्रिनिटी अर्थात्, खुला पूंजी खाता, मीयादी विनिमय दर और स्वतंत्र मौद्रिक नीति पर भी प्रभाव डाल सकता है। जी एफ डी के वित्तपोषण के लिए बाह्य वित्त पर निर्भरता कभी भी उच्च नहीं रही है और हाल की अवधि में उसमें गिरावट हुई है, जो भारतीय संदर्भ में एक स्वागत योग्य परिवर्तन है। महत्वपूर्ण है कि 2002-03 से 2004-05 तक बाह्य वित्तपोषण का अंश नकारात्मक हो गया था, चूंकि उच्च लागत वाले बाह्य ऋणों का इस अवधि के दौरान पहले ही भुगतान कर दिया गया था (चार्ट III.13)।

निवल पूंजी अंतर्वाह, बाजार स्थिरीकरण योजना और उसका मौद्रिक प्रभाव

3.69 2000 के वर्षों के दौरान, भारत में विदेशी मुद्रा भंडार में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई जो इस बात का संकेत था कि इस अवधि के दौरान रिज़र्व बैंक द्वारा निवल पूंजी अंतर्वाहों का एक भाग अवशोषित किया गया था। सैद्धांतिक आधार पर, निवल पूंजी अंतर्वाहों का रिज़र्व बैंक द्वारा अवशोषण आरक्षित मुद्रा का निर्माण

चार्ट III.13: सकल राजकोषीय घाटे का विदेशी वित्तपोषण सीमित रहना

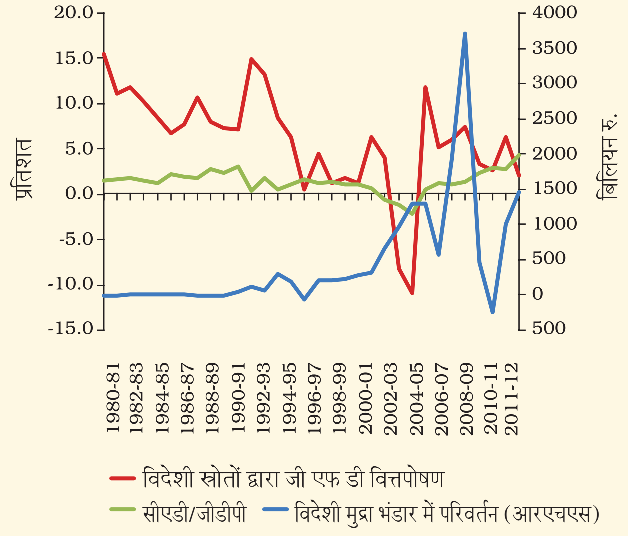

करता है जो प्रवर्धक प्रभाव के माध्यम से अर्थव्यवस्था में एम3 का निर्माण करता है। हालांकि रिज़र्व बैंक द्वारा उच्च निवल पूंजी अंतर्वाहों के अवशोषण के बावजूद जी डी पी के एक अनुपात के रूप में आरक्षित मुद्रा में इस अवधि के दौरान कोई उछाल नहीं दिखाई दिया। भारतीय रिज़र्व बैंक और भारत सरकार द्वारा 2004 में लागू बाजार स्थिरीकरण योजना (एम एस एस) का इस्तेमाल विदेशी मुद्रा बाजार हस्तक्षेप के प्रभाव को अवरूद्ध करने के लिए किया गया था, इस प्रकार निवल पूंजी अंतर्वाहों के मौद्रिक प्रभाव को सीमित किया गया था। एम एस एस पर ब्याज भुगतान सरकार द्वारा वहन किये जाते है। इस प्रकार, निवल पूंजी अंतर्वाहों के मौद्रिक प्रभाव को निष्क्रिय करने की प्रक्रिया में, राजकोषीय लागत उठाई गई थी, जिससे उच्चतर सकल राजकोषीय घाटे की स्थिति उत्पन्न हो गई। हालांकि, इस प्रक्रिया में राजकोषीय नीति ने मौद्रिक नीति को संकुचित बनाने के बजाय उसे और लचीला बना दिया था। वास्तव में, एम एस एस एक प्रभावी राजकोषीय -मौद्रिक समन्वय के उदाहरण के रूप में स्पष्ट दिखाई देती है जिसने पूंजी अंतर्वाहों में उछाल को प्रति संतुलित करने के लिए मौद्रिक संकुचन में ही सहायता नहीं की बल्कि आर्थिक गिरावट की स्थिति में उसने वैश्विक वित्तीय संकट के बाद एम एस एस के मोचन के माध्यम से मौद्रिक विस्तार में भी सहायता की थी।

सरकारी कर्ज का आंतरिक वित्तपोषण और उसका मौद्रिक प्रभाव

3.70 भारत में 90 प्रतिशत से अधिक सरकारी कर्ज का वित्तपोषण आंतरिक स्रोतों के माध्यम से होता है। सैद्धांतिक रूप में, यदि सार्वजनिक कर्ज देशी आधार पर रखा जाता है तो बाह्य निरंतरता के दृष्टिकोण से सार्वजनिक वित्त का जोखिम कम होना प्रतीत होता है। पुर्तगाल, आयरलैंड, युनान और स्पेन के हाल के अनुभव ने यह प्रदर्शित किया है कि सार्वजनिक कर्ज की बहुत अधिक बाह्य धारिता में एक राष्ट्रिक कर्ज संकट को प्रेरित करने की संभाव्यता होती है। इस दृष्टिकोण से, भारत की स्थिति काफी अच छी है क्योंकि भारत के अधिकांश सार्वजनिक कर्ज देशी आधार पर धारित हैं। किन्तु, यदि देशी आधार पर धारित सार्वजनिक कर्ज अत्यधिक हैं तो भी पुनर्वित्त का जोखिम है और ब्याज दर के चैनलों, निजी निवेश के बहिर्गमन तथा मुद्रीकरण के माध्यम से कतिपय मौद्रिक प्रभाव होते हैं।

3.71 सैद्धांतिक आधार पर, अर्थव्यवस्था में उच्चतर राजकोषीय घाटे को कुल ऋण योग्य निधियों के एक उच्चतर अंश में विनियोजित करने के द्वारा निजी क्षेत्र के लिए ब्याज दरें बढ़ सकती हैं। उच्च ब्याज दरें निजी क्षेत्र निवेश को घटा सकती हैं और जिसके परिणामस्वरूप समग्र आपूर्ति कम हो सकती है। समग्र आपूर्ति वक्र के बायीं तरफ खिसक जाने का निहितार्थ यह है कि आपूर्ति और मांग के बीच एक नया संतुलन उच्चतर कीमत के साथ जुड़ जाएगा। इस प्रकार, निजी निवेश के बहिर्गमन के प्रभाव के माध्यम से राजकोषीय घाटा समग्र उत्पादन में तदनुरूपी कमी के साथ अर्थव्यवस्था में कीमत स्तर बढ़ा सकता है।

3.72 सार्जेंट और वालेस के अनुसार, परिणामी कठोर मुद्रा और ब्याज दर स्थितियाँ एक अधारणीय कर्ज वित्तपोषण प्रक्रिया में परिणत हो सकती हैं, और इस प्रकार दीर्घावधि में उच्चतर मुद्रास्फीति की ओर बढ़ सकती हैं। इस ढांचे में, मुद्रास्फीति एक राजकोषीय प्रेरित घटना है, और अभिहित मौद्रिक संवृद्धि बजट दबावों की संतुष्टि के लिए बहिर्जात रूप से दिये गये घाटे के वित्तपोषण की आवश्यकता द्वारा अंतर्जात रूप से निर्धारित की जाती है।

3.73 इसके अलावा, यदि मौद्रिक प्राधिकारी निजी निवेश के बहिर्गमन को रोकने के द्वारा उच्चतर ब्याज दरों के प्रभाव को प्रतिसंतुलित करने का निर्णय लेता है तो मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि करनी पड़ सकती है। इसका निहितार्थ यह है कि ब्याज दर में तदनुरूपी कमी तथा उत्पादन में वृद्धि के साथ एल एम वक्र दाहिनी तरफ खिसक गया है। किन्तु, यदि अर्थव्यवस्था लगभग पूर्ण रोजगार स्तर पर परिचालित है तो मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि के परिणामस्वरूप उत्पादन में वृद्धि नहीं होगी, बल्कि इसकी बजाय अल्पावधि में कीमत स्तर बढ़ सकता है क्योंकि अल्पावधि सकल आपूर्ति वक्र लम्बवत है।

3.74 ऊपर दिये गये विभिन्न सैद्धांतिक तर्क बाजार उधारों के माध्यम से जी एफ डी के वित्तपोषण पर आधारित हैं। भारत में बाजार उधारों द्वारा वित्तपोषित किया गया जी एफ डी का अंश पिछले तीन दशकों में बढ़ गया है। जी डी पी के प्रतिशत के रूप में आरक्षित मुद्रा में भी निम्न दर पर वृद्धि देखी गई, जब कि विगत दशक में मुद्रास्फीति न्यूनतर थी। उल्लेखनीय रूप से, पिछले दशक के दौरान कुल जी एफ डी के लगभग 74 प्रतिशत का वित्तपोषण बाजार उधारों द्वारा किया गया था (सारणी 3.2) । कर्ज, घाटा और मुद्रा के गति सिद्धांत को समझने के लिए तकनीकी विश्लेषण बाद में लिया गया है।

3.75 जैसा कि पहले संकेत किया गया है, 1996-97 से प्रारंभ कर्ज प्रबंध नीति और मौद्रिक नीति के बीच सहबद्धता से संबंधित

सारणी 3.2: बाज़ार उधार, घाटे, आरक्षित मुद्रा और मुद्रास्फीति

औसत	जी एफ डी के प्रतिशत के रूप में बाजार उधार	डब्ल्यूपीआई मुद्रास्फीति	जीडीपी के प्रतिशत के रूप में आरक्षित मुद्रा
1980-81 से 1989-90	26.9	8.0	13.4
1990-91 से 1999-00	37.3	8.1	14.8
2000-01 से 2009-10	73.4	5.4	15.9

विभिन्न संस्थागत सुधारों से मौद्रिक स्वतंत्रता में काफी अधिक सुधार हुआ है।

3.76 मुद्रीकरण का प्रश्न, हालांकि शेष रह जाता है। अन्ततः कौन सरकारी घाटे का वित्तपोषण करता है, यह उस पर निर्भर नहीं करता है जो प्राथमिक बाजार में सरकारी प्रतिभूतियों में पहले अभिदान करता है, बल्कि उस पर निर्भर करता है जो सरकारी प्रतिभूतियों को अंतिम रूप से धारण करता है। भारत में, सरकारी प्रतिभूतियों का एक भाग रिज़र्व बैंक के पास है, और कर्ज वित्तपोषण के फलस्वरूप यदि इस धारिता में वृद्धि होती है तो वह द्वितीयक बाजार परिचालनों के माध्यम से मुद्रीकरण की ओर प्रेरित करती है। इस प्रकार, जैसा कि सार्जेंट और वालेस ने बताया है, सरकारी घाटे और कर्ज का अन्ततः दीर्घावधि में मुद्रीकरण किया जायगा, जिससे आरक्षित मुद्रा का निर्माण होगा। इस अध्याय के पूर्ववर्ती भाग में इन प्रश्नों पर विस्तार से विचार किया गया था।

3.77 कर्ज-घाटा गति सिद्धांत और मौद्रिक प्रबंध के बीच संबंध सरकारी बांडों के धन-प्रभाव द्वारा भी प्रभावित हो सकते हैं (किआ, 2006) । एफ टी पी एल के प्रस्तावकों का यह तर्क है कि गैर-रिकार्डियन विश्व में, बांड-धारक बांडों को भविष्य के करों के रूप में नहीं ले सकते हैं। इस प्रकार, चूंकि सरकार अपने घाटे के वित्तपोषण के लिए बांड जारी करती है, यह महसूस किया जाता है कि देश की संपत्ति में वृद्धि हो गई है। यह उच्चतर धन प्रभाव वस्तुओं तथा सेवाओं की मांग में वृद्धि कर सकता है और अल्पावधि में कीमतें बढ़ा सकता है।

3.78 चूंकि अलग-अलग देशों के संदर्भ में, राजकोषीय और मौद्रिक नीतियों के बीच सही अंतरापृष्ठ अनेक तथ्यों पर निर्भर होगा, ऊपर उल्लिखित सैद्धांतिक संभावनाएं विवादास्पद हैं। इस प्रकार, किसी देश विशेष में कौन सा सैद्धांतिक संबंध लागू होता है, यह समष्टि आर्थिक प्राथमिकताओं, राजनैतिक इच्छाशक्ति और अर्थव्यवस्था की अन्य ताकतों और कमजोरियों पर निर्भर करता है। कर्ज-घाटा गति सिद्धांत और मौद्रिक प्रबंध के बीच संबंध पर कुछ अनुभवजन्य साक्ष्य बॉक्स III.5 में उपलब्ध कराये गये हैं।

अनुभवजन्य विश्लेषण

3.79 अनुभवजन्य विश्लेषण में, निम्नलिखित तीन कारणों से केंद्र और राज्य सरकारों का संयुक्त कर्ज लिया गया थाः प्रथम, जैसा कि पहले संकेत किया गया है, वह कर्ज प्रबंध नीति है जिसमें मौद्रिक प्रबंध के लिए निहितार्थ हैं। इसके अलावा, राजकोषीय घाटे के निहितार्थ कर्ज प्रबंध नीति में प्रतिबिंबित हो सकते हैं, क्योंकि कर्ज पिछले घाटों का एक संचयन है। द्वितीय, प्राथमिक बाजार में सरकारी प्रतिभूतियों का पहला अभिदान ही नहीं, किन्तु द्वितीयक बाजार परिचालनों के माध्यम से सरकारी प्रतिभूतियों का अंतिम स्वामित्व भी मौद्रिक प्रबंध के लिए महत्वपूर्ण है। इस प्रकार, सरकार के संयुक्त कर्ज को एक व्याख्यात्मक परिवर्ती के रूप में लिया जाना सरकार के राजकोषीय घाटे की तुलना में इन गति सिद्धांतों का बेहतर ढंग से अभिग्रहण कर सकता है। तृतीय, संयुक्त कर्ज का इस्तेमाल इस कारण से किया जाता है कि अकेले केंद्र सरकार के कर्ज, आरक्षित मुद्रा और कर्ज के बीच संबंध को निर्धारित करने के लिए सही परिवर्ती नहीं हो सकते हैं, क्योंकि राज्य सरकारों की भी विगत दशकों में कर्ज की काफी अधिक राशियां संचित हो गई हैं। इसके अलावा, केंद्र सरकार की तरह, राज्य सरकारें भी अपने घाटों के वित्तपोषण के लिए बाजार के पास जाती हैं। राज्य सरकारों द्वारा जारी प्रतिभूतियों की भी भारत में एस एल आर हैसियत है और उनके कर्ज निर्गमों का प्रबंध रिज़र्व बैंक द्वारा किया जाता है। इस प्रकार, मौद्रिक प्रबंध के लिए राज्यों के कर्ज का निहितार्थ उतना ही महत्वपूर्ण हो सकता है जिनता कि केंद्र सरकार के कर्ज का निहितार्थ हो सकता है।

3.80 कर्ज और मुद्रा के बीच संबंध के गति सिद्धांत का अनुभवजन्य विश्लेषण करने के लिए एक स्वतः प्रतिगामी वितरित अंतराल (ए आर डी एल) मॉडल लागू किया जाता है [3] । ए आर डी एल बाउंड्स जांच दृष्टिकोण का प्रथम कदम यह है कि सामान्य न्यूनतम वर्ग द्वारा दो समीकरणों का अनुमान लगाना है:

3 आरक्षित मुद्रा और संयुक्त कर्ज में परिवर्तन के समाकलन के असमान क्रम के कारण ए आर डी एल लागू किया गया था।

बॉक्स III. 5
कर्ज-घाटा गति सिद्धांत और मौद्रिक प्रबंध: अनुभवजन्य साक्ष्य

अनुभवजन्य साहित्य में, राजकोषीय और मौद्रिक नीतियों के बीच संबंध को समझने के लिए भारत सहित विभिन्न देशों में अनेक प्रयास हुए हैं। मेटिन (1998) और हैमबर्गर तथा ज़्विक (1981) ने पाया कि मौद्रिक नीति, घाटों के बजाय सरकारी व्यय द्वारा काफी अधिक प्रभावित होती है। टेकिन -कोरू और ओज़मेन (2003) ने पाया कि टर्की में घाटे और मुद्रास्फीति के बीच कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं है।इस अध्ययन के अनुसार, टर्की में मुद्रास्फीति भी सिक्का-ढलाई मुनाफे का परिणाम नहीं थी, उसके बजाय, मुद्रा और मुद्रास्फीति, दोनों ही संयुक्त रूप से निर्धारित किये जाते हैं। इसी प्रकार के परिणाम 12 देशों में किंग (1985) द्वारा, यू. एस. के लिए जोइनेस (1985) द्वारा, 32 देशों के लिए करास (1994) द्वारा तथा 30 विकासशील देशों के लिए सिक्कन और हान (1998) द्वारा प्राप्त किये गये हैं। गियान्नरोस और कोल्लूरी (1985) ने पाया कि सामान्य परिस्थितियों में सरकारी बजट घाटा मुद्रा आपूर्ति संवृद्धि का अथवा मुद्रास्फीति का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से निर्धारक तत्व नहीं है। मुद्रास्फीति पर बजट घाटे के प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभावों के कुछ सांख्यिकीय साक्ष्य के साथ यू एस एक अपवाद है। 1954-76 की अवधि के आंकड़ों का इस्तेमाल करते हुए बैरो (1978) ने निष्कर्ष निकाला कि घाटे के बजाय वह सरकारी व्यय है जिससे यू एस में मौद्रिक संवृद्धि प्रभावित होती है। उसी प्रकार के आंकड़ो का इस्तेमाल करते हुए निस्कानेन (1978) ने पाया कि मुद्रा संवृद्धि दर के माध्यम से अथवा इससे अलग परिचालित मुद्रास्फीति दर पर सरकारी घाटे का कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ता है।

कैगन (1965) का तर्क है कि मुद्रा आपूर्ति अंतर्जात और बहिर्जात, दोनों ही संपत्तियों को प्रभावित करती है। अल्पावधि एवं चक्रीय घट-बढ़ के लिए, कैगन ने एक संबंध का प्रस्ताव रखा है जिसमें मुद्रा आपूर्ति रीयल सेक्टर में परिवर्तनों द्वारा अंतर्जात रूप से निर्धारित की जाती है। किन्तु, दीर्घावधि में, मुद्रा आपूर्ति में दीर्घकालिक प्रवृत्ति घट-बढ़ रीयल सेक्टर से स्वतंत्र है और बहिर्जात रूप से निर्धारित होती है। परिदा, मल्लिक और मैथियाजगन (2001) पाते हैं कि राजकोषीय घाटे और मुद्रा आपूर्ति एक दूसरे द्वारा प्रभावित होते हैं। इसके अलावा, कीमत स्तर राजकोषीय घाटे अथवा मुद्रा आपूर्ति, किसी को भी प्रभावित नहीं करता है किन्तु वह इन दोनों परिवर्तियों द्वारा प्रभावित होता है।

खुंद्रकपम और गोयल (2008) भारतीय संदर्भ में पाते हैं कि मुद्रा और वास्तविक उत्पादन अल्पावधि के अतिरिक्त दीर्घावधि में भी कीमतों को प्रभावित करते हैं। किन्तु, मुद्रा उत्पादन के प्रति तटस्थ है। इसके अलावा, साक्ष्य दर्शाते हैं कि सरकारी घाटा वर्धमान आरक्षित मुद्रा निर्माण के लिए प्रेरित करता है, यद्यपि रिज़र्व बैंक द्वारा सरकारी घाटे के लिए वित्त प्रदान करना चालू दशक के अधिकांश में अस्तित्व में नहीं रहा है। वे यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि सरकारी घाटा, अवरूद्धता के स्तर को प्रभावित करते हुए रिज़र्व बैंक के तुलन पत्र में निवल विदेशी आस्तियों में अभिवृद्धि को प्रभावित करता है और इसलिए वह वृद्धिशील आरक्षित मुद्रा निर्माण तथा मुद्रा आपूर्ति में समग्र विस्तार का मुख्य कारक बना हुआ है। इस तथ्य को समझते हुए कि मुद्रा, मुद्रास्फीति की तरफ प्रेरित करती है, सरकारी घाटा स्थिरीकरण के लिए प्रासंगिक रहता है।

संदर्भ

खुंद्रकपम, जीवन के. और राजन गोयल (2008) ''इज़दि गवर्नमेंट डेफिसिट इन इंडिया स्टिल रेलेवेंट फॉर स्टेबिलाइजेशन ?'', रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया ऑकेज़नल पेपर्स, वॉल्यूम 29, नं. 3, 1-21.

$$\Delta X_t = a_x + \sum_{i=1}^{n} b_{ix}\,\Delta X_{t-i} + \sum_{i=0}^{n} c_{ix}\,\Delta Y_{t-i} + \delta_{x1}X_{t-1} + \delta_{x2}Y_{t-1} + \varepsilon_t$$

$$\Delta Y_t = a_y + \sum_{i=1}^{n} b_{iy}\,\Delta Y_{t-i} + \sum_{i=0}^{n} c_{iy}\,\Delta X_{t-i} + \delta_{y1}Y_{t-1} + \delta_{y2}X_{t-1} + \varepsilon_t$$

जहाँ एक्स$_t$ आरक्षित मुद्रा में परिवर्तित होता है और वाई, संयुक्त कर्ज है।

3.81 परिवर्तियों में दीर्घावधि संबंध के अस्तित्व की जांच के लिए परिवर्तियों के अंतराल स्तरों के गुणांकों के संयुक्त महत्व के लिए एक एफ - टेस्ट किया गया था, अर्थात्

H0: $\delta_{x1} = \delta_{x2} = 0$ विकल्प के विरुद्ध

H1: $\delta_{y1} \neq \delta_{y2} \neq 0$

अंतराल आधारित परिवर्तियों के गुणांक पर एक टी-टेस्ट द्वारा परिणामों की पुष्टि की गई थी, अर्थात्

3 आरक्षित मुद्रा और संयुक्त कर्ज में परिवर्तन के समाकलन के असमान क्रम के कारण ए आर डी एल लागू किया गया था।

$\delta_{x1} \neq 0$ ए आर डी एल के प्रथम समीकरण में

$\delta_{y1} \neq 0$ ए आर डी एल के द्वितीय समीकरण में

परिणाम सारणी 3.3 में दिये गये हैं।

3.82 अंतराल आधारित परिवर्ती के गुणांक पर एक एफ -टेस्ट और टी-टेस्ट, दोनों का प्रयोग करते हुए परिवर्तियों के बीच दीर्घावधि संबंध के अस्तित्व की पुष्टि की गई थी। दोनो जांचों के परिणाम यह दर्शाते हैं कि सरकार के संयुक्त कर्ज और आरक्षित मुद्रा में परिवर्तन के बीच एक सह-संपूर्ण संबंध है[4]। विपरीत कारणता के लिए जांच

4 हालांकि, इस बात को ध्यान में रखना होगा कि रिज़र्व बैंक भी अपनी चलनिधि समायोजन सुविधा, सीमांत स्थायी सुविधा और आरक्षित नकदी निधि अनुपात में परिवर्तनों के माध्यम से आरक्षित मुद्रा में बदलाव कर सकता है, जैसा कि हाल के वर्षों में हुआ है।

सारणी 3.3: सरकारी कर्ज और आरक्षित मुद्रा के बीच सह-समन्वयन के लिए सीमाओं की जांच

परिवर्ती	मॉडल	एफ-टेस्ट			टी-टेस्ट	अकृत प्राक्कल्पना (सह-समन्वयन रहित)
		जांच संख्यिकी	न्यून महत्व मूल्य (95 प्रतिशत)	ऊपरी महत्व मूल्य (95 प्रतिशत)		
Δ लॉग आरएम/ लॉग सीटीडी	अवरूद्ध और प्रवृत्ति रहित	10.058*	4.934	5.764	3.620**	निरस्त
लॉग सीटीडी/ Δ लॉग आरएम	अवरूद्ध और प्रवृत्ति रहित	7.050*	4.934	5.764	-0.671	निरस्त नहीं / अनिर्णायक

* 5 प्रतिशत स्तर पर महत्वपूर्ण
** 1 प्रतिशत स्तर पर महत्वपूर्ण
जहाँ आर एम आरक्षित मुद्रा में परिवर्तित होता है और सी टी डी संयुक्त कुल कर्ज है।

का एक सार्थक एफ सांख्यिकी और निरर्थक टी सांख्यिकी के साथ कोई परिणाम नहीं निकला था। एक बार जब दीर्घावधि संबंध स्थापित हो जाता है तो दूसरा कदम दीर्घावधि गुणांकों का अनुमान लगाने के लिए होता है। निम्न लिखित समीकरण का प्रयोग करते हुए दीर्घावधि संबंध का अनुमान लगाया गया था।

$$X_t = a_0 + \sum_{i=1}^{n} b_1 X_{t-i} + \sum_{i=0}^{p} b_2 Y_{t-i} + \varepsilon_t$$

3.83 शवार्ज़ सूचना मानदंड के आधार पर मॉडल की लैग लेंग्थ निर्धारित की गई थी। आरक्षित मुद्रा में परिवर्तन पर संयुक्त सरकारी कर्ज का दीर्घावधि गुणांक महत्वपूर्ण होने का अनुमान है। दीर्घावधि अनुमानों के साथ संबद्ध एक त्रुटि सुधार मॉडल के अनुमान द्वारा संबंध का अल्पावधि गति सिद्धांत अभिगृहीत किया गया था। इस दीर्घावधि अनुमान के साथ संबद्ध त्रुटि सुधार मॉडल नीचे दिया गया है। अनुमान-परिणाम सारणी 3.4 में दिये गये हैं।

$$\Delta X_t = a_0 + \sum_{i=1}^{n} b_1 \Delta X_{t-i} + \sum_{i=0}^{p} b_2 \Delta Y_{t-i} + ECT_{t-1} + \varepsilon_t$$

3.84 दीर्घावधि संबंध से प्राप्त त्रुटि सुधार टर्म नकारात्मक और सांख्यिकीय दृष्टि से महत्वपूर्ण है, जिसकी संयुक्त सरकारी कर्ज से आरक्षित मुद्रा में परिवर्तन की कारणता की पुष्टि की गई है। -0.99 पर त्रुटि सुधार (ई सी) टर्म के गुणांक के साथ एक आघात के बाद संतुलन पर समायोजन की गति काफी अधिक है।

सारणी 3.4: आरक्षित मुद्रा के लिए त्रुटि सुधार मॉडल

आश्रित परिवर्ती: आरक्षित मुद्रा में लॉग परिवर्तन

व्याख्यात्मक परिवर्ती	गुणांक	टी-सांख्यिकी	पी-मूल्य
डी लॉग सीटीडी	-4.059	-0.843	0.406
ई सी एम (-1)	-0.997	-4.974*	0.000

*: 1 प्रतिशत स्तर पर महत्वपूर्ण

VII. समापन टिप्पणी

3.85 इस अध्याय में, हमने व्याख्यात्मक के अतिरिक्त अनुभवजन्य साक्ष्य प्रस्तुत किये हैं कि मौद्रिक नीति पर राजकोषीय प्रभुत्व इस सीमा तक रहता है कि मौद्रिक प्राधिकारियों को राजकोषीय घाटे के वित्तपोषण की आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर विभिन्न नीति उपकरणों के इस्तेमाल को अनुकूल बनाना पड़ता है। किन्तु, संस्थागत सुधारों के परिणामस्वरूप मौद्रिक नीति पर प्रत्यक्ष दबाव कम हो गया है। संस्थागत सुधारों का राजकोषीय क्षेत्र के अतिरिक्त मौद्रिक प्रबंध के क्षेत्र में सक्रियता से अनुपालन हुआ है। राजकोषीय-मौद्रिक ढांचों में सुधार के बावजूद, आने वाले समय में बृहत राजकोषीय-मौद्रिक समन्वय की आवश्यकता होगी। मुद्रास्फीति प्रबंध के दृष्टिकोण से यह समन्वय महत्वपूर्ण है, क्योंकि, दीर्घावधि में, मुद्रास्फीति राजकोषीय स्थिति में गिरावट का कारण बन जाती है, जिसकी वजह यह है कि मुद्रास्फीति के प्रति व्यय अनुक्रिया राजस्व अनुक्रिया से आगे निकल जाती है।

3.86 इस अध्याय में विश्लेषण यह दर्शाता है कि सरकारी व्यय कुल मिला कर प्रचक्रीय रहा है। सरकारी व्यय की यह प्र-चक्रीयता निभाई जा सकती है, यदि इसे राजस्व प्राप्तियों में आनुपातिक वृद्धि के साथ जोड़ दिया जाए और उसके द्वारा राजकोषीय घाटे को नियंत्रण में रखा जाए। इसकी अनुपस्थिति में सरकारी व्यय की प्रचक्रीयता उच्चतर राजकोषीय घाटे के साथ जोखिम पूर्ण हो सकती है। इसके लिए राजकोषीय नियमों का अधिक कठोर ढांचा उपलब्ध कराने हेतु आगे और संस्थागत सुधारों की आवश्यकता है जो कारोबार और निर्वाचन संबंधी चक्रों का मुकाबला कर सके।

3.87 अनुभवजन्य परिणाम भी यह दर्शाते हैं कि सरकारी कर्ज ग्रेंजर के कारण भारत में आरक्षित मुद्रा में वृद्धि होती है, और एक आघात के बाद संतुलन के लिए समायोजन की गति उच्च समायोजन गुणांक के साथ काफी तेज है। 1982-2011 की अवधि में यह कारणता संबंध 1997 तक रिज़र्व बैंक द्वारा तदर्थ खजाना बिलों के

माध्यम से और मार्च 2006 तक सरकारी कर्ज को प्राथमिक अभिदान के माध्यम से कर्ज के मुद्रीकरण में प्रतिबिंबित हो सकता है। बाद की अवधि में, काफी अधिक ओ एम ओ खरीद के कारण यह प्रभाव अब भी चिरस्थायी हो सकता है। इस प्रकार का राजकोषीय प्रभुत्व समग्र रूप से समष्टि आर्थिक स्थिरता के लिए विशेष रूप से हानिकारक है, यदि वह आरक्षित मुद्रा को वांछित स्तर से ऊपर की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित करता है, जिसकी आर्थिक संवृद्धि और मुद्रास्फीति के अनुरूप व्यापक मुद्रा विस्तार के लिए आवश्यकता होती है। इस संदर्भ में, संस्थागत ढांचों की डिज़ाइनिंग और प्रथाओं के लिए आगे और ध्यान देने की आवश्यकता होगी। समाप्त करने के लिए, राजकोषीय घाटे में स्थायी कमी से राजकोषीय प्रभुत्व में आगे और कमी हो सकती है जिससे मौद्रिक नीति को एक अधिक प्रभावी भूमिका निभाने के लिए तैयार किया जा सकता है। यह इस पृष्ठभूमि में है कि राजकोषीय समेकन के लिए रोड मैप पर समिति (अध्यक्षः डॉ. विजय एल. केलकर) की रिपोर्ट के पश्चात् संशोधित राजकोषीय रोडमैप का महत्व काफी बढ़ गया है। उक्त रोडमैप में 2016-17 तक जी एफ डी - जी डी पी अनुपात को 3-0 प्रतिशत तक नीचे लाने की परिकल्पना की गई है। राजस्व खाते पर राजकोषीय समायोजन रोडमैप को संभवतः तीव्र समायोजन संपादित करने की आवश्यकता है। कठोर नियम आधारित राजकोषीय प्रणाली के कार्यान्वयन से राजकोषीय-मौद्रिक समन्वय में सुधार होगा तथा समग्र समष्टि आर्थिक प्रबंध सुलभ होगा।